गाँधी : स्तरण और समाज

लेखक

शम्भू रत्न त्रिपाठी

समाजशास्त्र संसद
6 न्यू एस0आई0जी0, 'डब्लू' ब्लाक, जूही, कानपुर–208014

<u>गाँधी : स्तरण और समाज</u>

गाँधी जी ने भारत तथा विश्व के अन्य समाजों की सामाजिक विषमता पर वैज्ञानिक दृष्टि से विचार किया था तथा समाज की इस गम्भीर समस्या पर सन्तुलित अभिमत व्यक्त किया था। इस पुस्तक में गाँधी के सामाजिक स्तरण सम्बन्धी चिन्तन का समाजशास्त्रीय अनुशीलन पहली बार प्रस्तुत किया गया है। यह पुस्तक समाजशास्त्र तथा अन्य विषयों के पाठकों के अतिरिक्त सामाजिक कार्यकर्ताओं और राजनीतिज्ञों के लिए विशेष पठनीय है।

समाजशास्त्र के महत्वपूर्ण प्रकाशन

1. मार्क्सवादी समाजशास्त्र (अनुवाद)

   मूल लेखक : निकोलाई बुखारिन

2. समाजशास्त्र की विधिया (अनुवाद)

   मूल लेखक : चार्ल्स इलउड

3. विवाह और समाज (अनुवाद)

   मूल लेखक : वेस्टर मार्क

4. इमिल दुरखाइम :एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

   चित्रा त्रिपाठी

5. ऑगस्ट कॉस्ट : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

   चित्रा त्रिपाठी

6. विल्फ्रेडो परेटो : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

   प्रशान्त त्रिपाठी

7. मैक्स वैबर : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

   प्रशान्त त्रिपाठी

8. टलकट पारसन्स : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

   प्रशान्त त्रिपाठी

9. भारतीय सामाजिक मूल्य–सैद्धांतिकी

   चित्रा त्रिपाठी

10. भारतीय सामाजिक कर्म–सैद्धांतिकी

    प्रशान्त त्रिपाठी

समाजशास्त्र–ससंद

6 न्यू एम.आई.जी., डब्लू ब्लाक, जुही, कानपुर–208014

गाँधी : स्तरण और समाज

मूल्य : बीस रुपये (20.00)

पुस्तक	:	गाँधी : स्तरण और समाज
लेखक	:	शम्भूरत्न त्रिपाठी
प्रकाशक	:	समाजशास्त्र संसद
		6 न्यू एम.आई.जी., डब्लू ब्लाक,
		जुही, कानपुर–208014
मुद्रक	:	आराधना ब्रदर्स
		गोविन्द नगर, कानपुर

Gandhi : Staran Aur Samaj

- S. R. Tripathi

प्राक्कथन

गाँधी जी का चिन्तन मूलतः सामाजिक और वैज्ञानिक है। इसी परिप्रेक्ष्य में मैंने इस पुस्तक में गाँधी जी के सामाजिक स्तरण (Social Stratification) सम्बन्धी विचारों को यथासम्भव व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

सामाजिक स्तरण की प्रघटना विश्व के समाजशास्त्रीय चिन्तन का महत्वपूर्ण अंग है। अतीत और वर्तमान के अनेक समाजशास्त्रियों ने विपुल साहित्य की सृष्टि की है और अथक अनुसन्धान किया है। मार्क्स और मार्क्सवादी चिन्तन का तो यह विषय प्राणतत्त्व ही है। मार्क्सवादी चिन्तन से पृथक् विशुद्ध वैज्ञानिक रूप में जर्मन विद्वान मैक्स वेबर, फ्राँसीसी समाजशास्त्री इमाइल डुरखीम और अमेरिकी समाजशास्त्री पिटरिम सोरोकिन आदि पुरानी पीढ़ी के विचारकों तथा वर्तमान युग के सैकड़ों शोधकर्त्ताओं ने इस सन्दर्भ में प्रचुर सामग्री प्रस्तुत की है। गाँधी जी का सामाजिक स्तरण सम्बन्धी चिंतन इन विद्वानों और शोधकर्ताओं की विचारसरणि में अप्रतिम है। उन्होंने इंग्लैण्ड, दक्षिणी अफ्रीका तथा भारत में विभिन्न प्रकार के प्रजातीय, जातीय, वर्गीय समूहों में दीर्घ अवधि तक सम्पृक्त रहकर सामाजिक स्तरण की प्रणाली के विविध पक्षों का प्रत्यक्ष और सूक्ष्म अनुभव प्राप्त किया, चिन्तन किया और अनेक प्रयोग किये, तथा इस सम्बन्ध में एक सार्वभौम सिद्धान्त प्रस्तुत करने में सफल हुए। यह है गाँधी का वर्ण–सिद्धान्त। गाँधी जी का यह सिद्धान्त हिन्दुओं में प्रचलित वर्ण–सिद्धान्त नहीं है। उनके वर्ण–सिद्धान्त में पर्याप्त अन्तर है, जो पुस्तक पढ़ने से ज्ञात होगा। यह सिद्धान्त केवल हिन्दू–समाज के लिए ही नहीं, अपितु संसार के प्रत्येक मानव–समाज की संरचना, सावयवी एकता और यथार्थ प्रगति के लिए व्यवहार्य है; और इसका आधार है – सत्य, केवल सत्य।

वास्तव में आधुनिक युग के अनेक समाजशास्त्री अध्ययन पद्धतियों के जटिल जाल में ग्रस्त होकर तथा अतिवादी वैज्ञानिक भावना के व्यामोह के कारण स्तरण की समस्या पर उचित, व्यापक और स्पष्ट परिप्रेक्ष्य–निर्माण करने में असमर्थ रहे। गाँधी जी ने प्रजातीय और जातीय स्तरण के सम्बन्ध में जो सत्य आज से चालीस वर्षों पूर्व घोषित किए थे, उन्हीं

को आज के समाजवैज्ञानिक दुरूह पारिभाषिक शब्दावली में प्रस्तुत करने में गौरव की अनुभूति कर रहे हैं और पाठकों को चमत्कृत कर रहे हैं।

आज के अधिकांश समाज–वैज्ञानिकों का लक्ष्य केवल वैज्ञानिकता और विद्वता है, जबकि गाँधी जी की समाज–वैज्ञानिक अर्थात् सत्य–शोधक प्रणाली का लक्ष्य मनुष्य और समाज रहा है। अतः उन्होंने अपनी उपलब्धियों को सहज बोधगम्य रीति से प्रस्तुत किया। उनकी स्वाभाविक और सोद्देश्य आडम्बर शून्यता और अकृत्रिमता पाण्डित्य–प्रेमियों को आतंकित भले न कर पाती हो; कल्याणप्रद है। पाश्चात्य समाज–वैज्ञानिकों के सामाजिक स्तरण सम्बन्धी विचारों के पर्याप्त अनुशीलन के बाद ही मैंने उक्त मत निर्धारित किया है। मेरे मत की सार्थकता इस पुस्तक के पढ़ने से अवश्य प्रमाणित होगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

– शम्भूरत्न त्रिपाठी

विषय–सूची

4. गाँधी : सामाजिक स्तरण का सिद्धान्त

1. प्रारम्भिक
2. वर्ण–व्यवस्था क्या नहीं है
3. वर्ण–सिद्धान्त क्या है
4. वर्ण–सिद्धान्त तथा अन्य विचारक

1

गाँधी : प्रजातिवाद और समाज

1. प्रारम्भिक

यहाँ पर 'प्रजाति' शब्द अंग्रजी के 'रेस' (Race) शब्द के हिन्दी रूपान्तर के रूप में प्रयोग किया गया है। प्रजाति के विभिन्न पक्षों का अध्ययन प्राणिशास्त्र, मानवशास्त्र, समाजशास्त्र और मनोविज्ञान में किया जाता है।

प्रजाति शब्द का प्रायः बहुत भ्रामक प्रयोग होता है। सामान्यतः लोग इसे राष्ट्र, जाति (कास्ट), भाषा, संस्कृति आदि के पर्याय के रूप में प्रयोग करते हैं; किन्तु वैज्ञानिक अध्ययनों में इन भ्रमों का निवारण हो चुका है। अब निश्चित हो चुका है कि यह "जैविकीय शब्द है, जो व्यक्तियों के बड़े समूह की कुछ ऐसी भौतिक सदृशताओं को व्यक्त करता है, जो आनुवंशिकता (Heredity) की प्रकिया द्वारा संप्रेषित हो सकती हैं।"[1] अधिक स्पष्ट रूप में कह सकते हैं कि प्रजाति मनुष्यों के ऐसे बड़े समूह को कहते हैं जिसके सदस्यों के शारीरिक लक्षणों में सामान्य रूप से समानता होती है। ये समानतायें सदस्य अपने पूर्वजों से आनुवंशिकता से प्राप्त करते रहते हैं। चूँकि एक प्रजाति के लोग सामाजिक कारणों से अपने समूह में ही विवाह करते हैं, इसलिए उस समूह में एक ही प्रकार के शारीरिक गुणों वाले व्यक्तियों की वृद्धि होती जाती है।[2]

उपर्युक्त परिभाषा के अनुसार प्रजाति को जैविकीय अवधारणा मान लेने के पश्चात् प्रश्न उठता है कि समाजशास्त्र का इससे क्या सम्बन्ध है? इसका उत्तर यह है कि प्रजाति एक जैवकीय सिद्धान्त अवश्य है, लेकिन यह सामाजिक सिद्धान्तों के लिए एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है; क्योंकि शारीरिक लक्षणों के आधार पर भी मनुष्यों के विभाजन की प्रवृत्तियाँ प्रचलित हो गई हैं। ऐसी अवस्था में प्रजाति को एक सामाजिक तथ्य मानने से इन्कार नहीं

1. एफ.ई. मेरिल, सोसाइटी एण्ड कल्चर, पृ. 253
2. शम्भू रत्न त्रिपाठी, भारतीय संस्कृति और समाज, पृ. 20

किया जा सकता है; क्योंकि मनुष्य सामाजिक और सांस्कृतिक विशेषताओं के साथ–साथ रंगभेद आदि शारीरिक विशेषताओं के प्रति भी जागरूक हैं। काले–गोरे, काकेसायड–नीग्रायड, आर्य–द्रविड़ आदि के प्रजातीय अंतर ऐसे हैं, जो समाज में श्रेष्ठता और निम्नता के प्रश्न को उठा रहे हैं। अनेक प्रजातीय–समूहों ने शारीरिक विशेषताओं के आधार पर अपनी वरेण्यता को सिद्ध करने का प्रयत्न किया और अपने मत के समर्थन के लिए उन्होंने अनेक प्रमाण एकत्र किये। लेकिन अभी तक उनके प्रमाणों की तथ्यता का समर्थन किन्हीं अधिकारी वैज्ञानिकों द्वारा नहीं किया गया है। व्यावहारिक जीवन में प्रायः देखा जाता है कि साधारण लोगों में किसी प्रकार के निर्णय करने की वैज्ञानिक बुद्धि का अभाव होता है। वे सामान्यतः रूढ़िवादी बंधी–टकी विचारधारा के पालन करने वाले होते हैं तथा ऐसे विचारों का आदर करते हैं, जो उनको संवेदनात्मक सुरक्षा प्रदान कर' सकें। प्रजाति एक ऐसा विषय है, जो जनसाधारण को संवेदनात्मक चिन्तन के लिए प्रेरित किया करता है। अधिकांशतः लोग प्रजाति के उन्हीं पक्षों पर विचार करते हैं, जो उनकी सांस्कृतिक सम्पदा तथा सामाजिक संगठन के अनुकूल हैं। वे ऐसी बातों को बिना विचार किए हुए तथा बिना किसी अनुभव के स्वीकार कर लेते हैं और शीघ्र ही गलत–सही बातें उनके व्यक्तित्व का अभिन्न अंग बन जाती हैं।

विश्व में अनेक समूह ऐसे हैं, जिनके संगठन के आधार में यह बात है कि एक प्रजातीय समूह दूसरे की अपेक्षा जैविकीय दृष्टि से श्रेष्ठ है तथा उसमें संस्कृति के विकास और वृद्धि में योग प्रदान करने की बहुत अधिक क्षमता है। इस प्रकार की बातें बालक अपने माता–पिता से ग्रहण करते हैं ंऔर अपने सामाजिक सम्बन्धों के निर्माण में उनसे प्रभावित होते हैं। उनके मस्तिष्क में प्रजाति की श्रेष्ठता और हीनता का चित्र बाल्यावस्था से ही बनने लगता है, जो आगे चलकर अनेक प्रयत्नों के बाद भी मूल रूप से नष्ट नहीं होता है भले ही उन व्यक्तियों का सम्बन्ध किसी वैज्ञानिक और उदात्त विचारधारा से क्यों न रहा हो। उदाहरण के लिये नीग्रो और गोरों की समस्या ले सकते हैं। नीग्रो लोगों को गोरों के समाज में केवल इसीलिए सुविधायें नहीं प्रदान की जाती हैं; क्योंकि गोरे अपनी प्रजाति की अपेक्षा नीग्रो की प्रजाति को हीन समझते हैं। विज्ञान इस बात का बिल्कुल समर्थन नहीं करता है; किन्तु विज्ञान के अनन्य उपासक अमेरिकन इस पूर्वाग्रह से मुक्त नहीं हो पाये हैं और आज भी गोरे नीग्रो लोगों का बड़ा नृशंसता से सामाजिक बहिष्कार करते हैं। यह

प्रजातीय अन्धविश्वास केवल सामाजिक समूहों को ही नहीं प्रभावित करता है, अपितु अन्तरराष्ट्रीय राजनीतिक सम्बन्धों तक को बड़े विचित्र मोड़ देता है। कभी–कभी बड़े–बड़े राष्ट्र प्रजातीय पूर्वाग्रहों की ओट में युद्धरत हो जाते हैं; क्योंकि कुछ प्रजातियाँ अपने को विश्व की सर्वश्रेष्ठ प्रजाति मानती हैं और इसी आधार पर वह दूसरों को सिखाने और दूसरों पर शासन करने को जन्मसिद्ध अधिकार मान बैठी हैं। हिटलर के नाजीवाद का यही मत बहुत बड़ा आधार था। हेसग्रंथर यह कहता था कि नार्डिक प्रजाति में व्यक्तित्व, आत्म–नियंत्रण, साहस, कल्पना, दूरदर्शिता और दृढ़ इच्छा–शक्ति पायी जाती है, जो अन्य प्रजातियों में नहीं हैं। चेम्बरलेन कहता था कि जिस देश में जितना कम ट्यूटनों का रक्त होगा, वह देश उतना ही असभ्य होगा। सफेद प्रजाति वाले राष्ट्रों ने अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिये, बिना किसी वैज्ञानिक आधार के अपनी प्रजाति की श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए सिद्धान्त बनाये और अनेक रंगीन प्रजातियों वाले राष्ट्रों को गुलाम बनाया, उनका शोषण किया तथा अनेक प्रकार के अमानवीय कार्य किये। इतना ही नहीं, सफेद प्रजातियों में भी परस्पर उच्च–निम्न के कपोल–कल्पित सिद्धान्त बनाये गए और एक–दूसरे को अधीन करने के प्रयत्न किये गये, जिससे संघर्ष और युद्ध हुये।

गाँधी जी को प्रजातिवाद के इस विष का कुछ अनुभव इंग्लैण्ड के छात्र जीवन में हुआ था; किन्तु इसका पूर्ण अनुभव दक्षिणी अफ्रीका के प्रवास में हुआ। जब वहाँ पर प्रजातीय भेद–भाव अपने निकृष्टतम अमानवीय रूप में सामने आया, तब उन्होंने इस प्रश्न के विभिन्न पक्षों पर निष्पक्ष रूप से विचार किया और भाषणों, लेखों, पुस्तिकाओं आदि के माध्यम से अपना मत व्यक्त किया और समाज के इस विघटक तत्त्व के उन्मूलन के लिए दक्षिणी अफ्रीका में बीस वर्षों तक संघर्ष किया।

यहाँ पर हमें उनके इस संघर्ष का इतिहास नहीं देना हैं, अपितु उनके इस इतिहास की प्रचुर सामग्री से खोज निकालना है कि उनकी दृष्टि में प्रजाति सम्बन्धी भ्रामक धारणाएं किस प्रकार समाज को प्रभावित करती हैं, प्रजाति सम्बन्धी कौन–सा विचार सत्य और कल्याणकारी है तथा इस विकट समस्या के समाधान के लिये किस मार्ग का अनुसरण करना चाहिये।

2. प्रजाति–भेद का सत्य

प्रजाति–भेद के सम्बन्ध में गाँधी जी का मत है कि मनुष्यों की विभिन्न प्रजातियां एक वृक्ष की विभिन्न शाखाओं के समान हैं – जब हम एक बार विभिन्न प्रजातियों का मूल स्वीकार कर लेते हैं, जिससे विभिन्न प्रजातियां उत्पन्न हुई हैं, तब संसार के समस्त मनुष्यों को एक परिवार के सदस्य के रूप में मान लेते हैं। ऐसी अवस्था में पारस्परिक वैमनस्य और अस्वस्थ प्रतिद्वन्दिता के लिये कोई स्थान नहीं रहता है।[1] संसार के समस्त प्राणियों का पिता–जन्मदाता एक ईश्वर है।[2] उसकी दृष्टि में सब समान हैं, कोई छोटा–बड़ा नहीं है। समस्त प्रजातीय समूह समान क्षमताओं के साथ उत्पन्न होते हैं, किन्तु अनुकूल–प्रतिकूल परिस्थितियों के अनुसार क्षमताओं का अधिक–कम विकास हो पाता है।[3] बाह्‌य लक्षणों आदि से कोई प्रजाति श्रेष्ठ या हीन नहीं होती है, अपितु जीवन के उच्च–उदात्त नैतिक मूल्यों से कोई प्रजाति श्रेष्ठ मानी जा सकती है। रंग–भेद आदि तो परिस्थितिजन्य है।

प्रजातिवाद में यह प्रायः माना जाता है कि सफेद प्रजातियों का ज्ञान और बुद्धि पर एकाधिकार है। गाँधी जी इसे भ्रम मानते हैं। वह कहते हैं कि पूर्व की प्रजातियों ने पश्चिम की प्रजातियों की अपेक्षा कम ज्ञानी नहीं दिये हैं। जोरस्टर पूर्व के थे। बुद्ध ने पूर्व में ही जन्म लिया। बुद्ध के बाद ईसा पूर्व से ही आये। ईसा के पूर्व मोसेस फिलिस्तीन के थे, किन्तु उनका जन्म मिश्र में ही हुआ। मुहम्मद, राम, कृष्ण पूर्व में ही हुये। वह आगे कहते कि मैं एक भी ऐसे व्यक्ति को नहीं जानता, जो एशिया के इन महापुरुषों की टक्कर का हो।[4] उन्होंने अपनी खुली चिट्‌ठी में अनेक विश्वसनीय प्रमाणों के साथ यह सिद्ध किया था कि भारतीय, जिन्हें अंग्रेज आदिवासी और असभ्य कहते थे, अंग्रेजो से किसी भी दशा में कम सभ्य नहीं हैं। "औद्योगिक, बौद्धिक, काव्यात्मक आदि जीवन के विभिन्न अंगों में उनके एंग्लो–सेक्सन भाइयों से अगर मैं इस शब्द का उपयोग कर सकूँ तो किसी कदर ओछे नहीं हैं; कि भारत ने बुद्ध को जन्म दिया, जिनके जीवन को कुछ लोग तमाम मनुष्यों के जीवनों से श्रेष्ठ और पवित्रतम मानते हैं और कुछ लोग ईसा के जीवन से दोयम बताते हैं; कि भारत ने ऐसे अकबर को जन्म दिया, जिसकी नीति को ब्रिटिश सरकार ने इने–गिने संशोधनों के साथ स्वीकार किया; कि अभी थोड़े ही वर्ष पहले भारत ने एक ऐसे पारसी बैरेनेट को खोया है, जिसने अपनी दानशीलता से न केवल भारत को वरन् इंग्लैण्ड को भी

---

1. गाँधी, हरिजन 18.2.1939
2. ,, ,, 30.6.1946
3. ,, ,, ,, ,, ,,
4. ,, ,, 20.4.1937

आश्चर्यचकित कर दिया था; कि भारत ने पत्रकार क्रिस्टोदास पाल को जन्म दिया, जिसकी वर्तमान बाइसराय लार्ड एलगिन ने यूरोप के सर्वश्रेष्ठ पत्रकारों से तुलना की है; कि भारत ने न्यायमूर्ति मोहम्मद और सर टी० मुतु स्वामी अय्यर को जन्म दिया है, जो दोनों भारत के उच्च–न्यायालयों के न्यायाधीश हैं और जिनके फैसले भारत के उच्च न्यायालयों में न्यायाधीशों के आसनों को सुशोभित करने वाले भारतीय तथा यूरोपीय न्यायाधीशों के निर्णयों में सबसे योग्य माने गये हैं; और आखिर में, भारत में बदरुद्दीन (तैयबजी), (सुरेन्द्रनाथ) बनर्जी और (फीरोजशाह) मेहता जैसे वक्ता हैं, जिन्होंने अनेक अवसरों पर इंगलिस्तान के श्रोताओं को मन्त्रमुग्ध किया है।''[1]

सफेद प्रजातियों का दावा है कि वे काली प्रजातियों से मानसिक स्तर में उच्च होती हैं। इस सम्बन्ध में गाँधी जी ने लिखा था, ''परन्तु वे (भारतीय) अयोग्य नहीं हैं, यह तो ऐसे विषयों के बड़े–से–बड़े पण्डितों द्वारा असंदिग्ध रूप में सिद्ध किया जा चुका है। इंगलैण्ड और भारत दोनों में ही अंग्रेज तथा भारतीय विद्यार्थियों की प्रतिद्वन्द्विता के परिणामों से पर्याप्त प्रमाण मिल जाता है कि भारतीयों में योरोपियों से सफलतापूर्वक होड़ करने की सामर्थ्य मौजूद है।''[2]

गाँधी जी यह स्वीकार नहीं करते हैं कि एशिया की रंगीन प्रजातियाँ सफेद प्रजातियों से हीन हैं। इसके अतिरिक्त वह यह भी नहीं स्वीकार करते हैं कि तथाकथित सभ्य प्रजातियां वस्तुतः पिछड़ी हुई प्रजातियों को सभ्य बनाने के लिए उन्हें गुलाम बनायें और उनका शोषण करें, जैसा सफेद प्रजातियों ने किया है। वह प्रजातिवाद के इस सिद्धान्त को स्वार्थपूर्ण, अनैतिक और अमानवीय मानते हैं। वह भेदभाव, शोषण तथा पृथक्करण की नीति को ईश्वर और मनुष्य के प्रति किया गया घोर अपराध मानते हैं।

गाँधी जी ने प्रजातीय भेद–भाव के विरुद्ध यह भी तर्क प्रस्तुत किया है कि प्रजातीय भेद–भाव को जन्म देने वाली प्रजातियाँ अधिकाँशतः ईसा–धर्म को मानती हैं। ईसा स्वयं उसी प्रजाति के थे, जिससे सफेद प्रजातियाँ घृणा करती हैं। इसके अतिरिक्त ईसा ने मानव मात्र में भेद–भाव, घृणा–द्वेष करना नहीं सिखाया। ''जिस विभूति (ईसा) ने हमें अपने शत्रुओं से प्रेम करने का और जिसे हमारे कोट की जरूरत हो उसे अपना चोगा दे देने की

1. सम्पूर्ण गाँधी वाङ्मय, खुली चिट्ठी, पृष्ठ 159
2. सम्पूर्ण गाँधी वाङ्मय, प्रार्थना पत्र : लार्ड रियन को पृष्ठ 123

और जब बायें गाल पर तमाचा मारा जाय तब दाहिना गाल सामने कर देने की शिक्षा दी और जिसने यहूदी और गैरयहूदी भेद को उखाड़ फेंका, वह ऐसी वृत्ति कभी बरदाश्त नहीं करेगा, जो आदमी को इतना अहंकारी बनाती है कि वह अपने सहजीवी के स्पर्श से भी अपने आपको नापाक हुआ माने।''[1]

गाँधी जी प्रजातिवाद को सामाजिक संगठन के नियमों का बाधक मानते हैं। प्रजातिवाद विभिन्न प्रजातियों में पारस्परिक घृणा, द्वेष, संघर्ष की वृद्धि करके समाज की एकता और शान्ति को भंग करता है और समाज की प्रगति में बाधा पहुंचाता है। उन्होंने अंग्रेजों को सम्बोधित करते हुए लिखा था, ''आप एकता को बढ़ायेंगे, जो प्रगति के निमित्त होती है या वैमनस्य बढ़ायेंगे, जो अधः—पतन के निमित्त होती है।''[2] उन्होंने प्रजातिवाद के समर्थकों और पोषकों को सम्बोधित करते हुए लिखा था, ''मैं आप से सद्भावना का अनुरोध करता हूँ और पूछता हूँ कि क्या दोनों समाजों के भेद—सूचक तत्त्वों को, जो अक्सर बहुत खिंचे तने या निरे काल्पनिक होते हैं, जनता के सामने खोल कर दिखाने के बजाय आप उनके साम्य—सूचक मुद्दों को एकत्र करके प्रदर्शित करें, तो मानव—जाति की अधिक सेवा नहीं होगी? विरोधी तत्त्व मनुष्य के बुरे से बुरे भावों को जगा सकते हैं न, जबकि किसी का सच्चा लाभ उनसे हो ही नहीं सकता? मैं नहीं समझता कि दोनों राष्ट्रों के बीच ईर्ष्या और शत्रुता के बीज बोना आप के लिए लाभजनक हो सकता है। मुझे कोई सन्देह नहीं कि ऐसा करने की शक्ति आप में है, जैसा कि हर एक में कम या ज्यादा मात्रा में होती है। परन्तु इससे बहुत ऊँची और बहुत उदात्त एक चीज भी आपकी पहुँच के अन्दर है — वह एक ऐसी चीज है, जो न केवल आपको महत्ता प्रदान करेगी बल्कि भला भी बनाएगी।''[3]

गाँधी जी अपने पर्यवेक्षण और विश्लेषण से इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि प्रजातिवाद का सिद्धान्त स्वार्थपूर्ति और शोषण के लिए निर्मित हुआ है। इसके पीछे कोई वैधानिक, नैतिक या धार्मिक तर्क नहीं है। उन्होंने दक्षिणी अफ्रीकी रंग—भेद की समस्या का मूल कारण, व्यापारिक प्रतिद्वन्दिता बताया है। वहाँ के भारतीय व्यापारी अंग्रेज व्यापारियों की तुलना में अधिक सफल सिद्ध हो रहे थे। इसीलिए ईर्ष्या के कारण अंग्रेजों ने प्रजातिवाद का नारा लगाकर उन्हें वहाँ से निकालने का प्रयत्न किया था। वस्तुतः ''उपनिवेश की

---

1. सम्पूर्ण गाँधी वाङ्मय, 1. खुली चिट्ठी, पृष्ठ 165
2. सम्पूर्ण गाँधी वाङ्मय, 1. खुली चिट्ठी, पृष्ठ 166
3. सम्पूर्ण गाँधी वाङ्मय, 1. भारतीय और मताधिकार, पृष्ठ 113—114

इच्छा थी कि वह भारतीयों के परिश्रम से पूरा लाभ उठाये, क्योंकि वहाँ के देशी आदमी खेतों पर काम नहीं करना चाहते और यूरोपीय तो काम कर ही नहीं सकते। परन्तु ज्यों ही भारतीय लोग व्यापारी बन कर यूरोपियों से होड़ लेने लगे त्यों ही सुसंगठित अत्याचार की पद्धति से उनके मार्ग में रुकावटें डाली जाने लगीं, उनका विरोध होने लगा और उनका तरह–तरह से अपमान शुरू हुआ। धीरे–धीरे अत्याचार और द्वेष की भावना उपनिवेश कानूनों में उतार दी गई।''[1] उन्होंने 'इण्टर एशियन रिलेशन कान्फ्रेंस' दिल्ली में स्पष्ट शब्दों में कहा था कि ''यूरोप की सफेद प्रजातियों ने एशिया की विभिन्न प्रजातियों का बहुत शोषण किया है।''[2] उनका निश्चित मत है कि विश्व युद्धों और अशान्ति का मुख्य कारण इन तथाकथित उच्च प्रजातियों का मिथ्या अहं और स्वार्थपरता है। प्रत्येक उच्च कहलाने वाली सफेद प्रजाति विश्व की निर्बल प्रजातियों का अधिक–से–अधिक शोषण करना चाहती है। इस शोषण की प्रवृत्ति और साम्राज्यवाद की महत्त्वाकांक्षा की प्रतिद्वन्द्विता का ही परस्पर संघर्ष होता है। जब तक विश्व के समस्त छोटे–बड़े राष्ट्र ऊँच–नीच की भावनाओं से मुक्त होकर समानता का व्यवहार नहीं करेंगे और स्वार्थ और शोषण की भावनाओं का त्याग नहीं करेंगे, तब तक विश्व में शान्ति नहीं स्थापित हो सकती है।

सारांश रूप में, यह कहा जा सकता है कि गाँधी जी प्रजाति–भेद के आचार से उत्पन्न सामाजिक विषमता, घृणा, ईर्ष्या, द्वेष, दमन, शोषण के घोर विरोधी हैं। इसे वह धार्मिक, नैतिक, वैज्ञानिक, राजनैतिक तथा सामाजिक दृष्टि से अनुचित मानते हैं। उनका दृढ़ विश्वास है कि जब तक प्रजातीय भेद–भाव का अन्त नहीं होगा, तब तक विश्व की मानवता एकता के सूत्र में आबद्ध नहीं की जा सकती है। विश्व की समस्त प्रजातियां एक ही मूल से उत्पन्न हुई हैं, समस्त प्रजातियों में सभ्यता और संस्कृति का विकास करने की समान क्षमतायें निहित होती हैं। यदि इनको अनुकूल अवसर प्राप्त हों तो प्रत्येक प्रजाति उन्नति के उच्च शिखर पर पहुंच सकती है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि प्रत्येक पिछड़ी हुई या निर्बल प्रजाति को अपने विकास के लिए पूर्ण स्वतन्त्रता और उपयुक्त परिस्थितियां प्राप्त हों। तथाकथित उच्च प्रजातियाँ प्रजातिवाद के मिथ्या सिद्धान्तों के आधारों पर इन निर्बल प्रजातियों के मार्ग में बाधा ही न उत्पन्न करें, अपितु उनको अपने विकास के लिए उचित और उदार सहयोग प्रदान करें। गाँधी जी ने ये निष्कर्ष दशकों पूर्व

---

1. सम्पूर्ण गाँधी वाङमय, स्टेट्स मैन के प्रतिनिधि की भेंट, पृ. 136
2. गाँधी, हरिजन, पृ. 4.47

विश्व के विचारकों के समक्ष प्रस्तुत किए थे और इन निष्कर्षों को कार्य रूप में परिणित करने के लिए सबसे पहिले दक्षिणी अफ्रीका में अहिंसक आन्दोलन प्रारम्भ किया था। उस समय साम्राज्यवादी राष्ट्रों ने स्वार्थ और सत्ता के मद में विशेष ध्यान नहीं दिया था, किन्तु कालान्तर में भारत की जागृति के साथ–साथ धीरे–धीरे अन्य शोषित प्रजातियों में चेतना आई तो तथाकथित सभ्य प्रजातियों का शोषण धीरे–धीरे समाप्त होने लगा और आज विश्व में अनेक प्रजातियों और राष्ट्रों ने सफेद प्रजातियों के शोषण को समाप्त कर दिया है। अब बड़े–बड़े तथाकथित राष्ट्र प्रजाति–भेद के सम्बन्ध में उसी प्रकार सोचने और आचरण करने में कल्याण अनुभव कर रहे हैं जैसा आधी शताब्दी पूर्व गाँधी जी ने कहा था। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि संयुक्त राष्ट्र संघ की यूनेस्को शाखा ने विश्व के मानव–शास्त्र, मनोविज्ञान, प्राणिशास्त्र, समाजशास्त्र आदि के विद्वानों को प्रजाति सम्बन्धी निष्कर्षों को प्रस्तुत करने के लिए आमन्त्रित किया था, जिन्होंने पर्याप्त विचार–विमर्श के पश्चात् 8 जून सन् 1951 को नौसूत्रीय निष्कर्ष एक मत से प्रस्तुत किए थे। इन वैज्ञानिकों के निष्कर्षों की मूल ध्वनि वही है, जो गाँधी जी के निष्कर्षों की है।

इन विद्वानों का पहला निष्कर्ष यह है कि वैज्ञानिक साधारणतः इस बात पर सहमत हैं कि आज समस्त जीवित मनुष्य 'होमोसेपियन' नामक एक ही मानव संजाति के हैं और एक ही सामान्य मूल से उत्पन्न हुए हैं।[1] गाँधी जी ने भी यही कहा था कि अप्रत्यक्ष रूप से विभिन्न प्रजातियां एक वृक्ष की विभिन्न शाखाओं के समान हैं, संसार के नियामक एक ईश्वर की सन्तानें हैं। इन वैज्ञानिकों का दूसरा महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष यह है कि ''जहाँ तक विश्लेषण द्वारा निर्धारण हो सका है, विभिन्न मुख्य समूहों को शारीरिक रचना की विभिन्नताओं से सामान्य 'श्रेष्ठता' अथवा 'हीनता' की ऐसी लोक–प्रचलित धारणाओं का तनिक भी समर्थन नहीं होता, जिनका कभी–कभी इन समूहों का उल्लेख करते समय अभिप्राय हुआ करता है।''[2] गाँधी जी ने भी जातीय भेद–भाव अथवा हीनता–श्रेष्ठता की भावना का सदा खण्डन किया है। वैज्ञानिकों का तीसरा निष्कर्ष यह है कि साधारण व्यक्ति चाहे किसी भी प्रजाति का हो, मूलतः शिक्षित किया जा सकता है, जिससे यह निष्कर्ष निकलता है कि उसका बौद्धिक और नैतिक जीवन बहुत कुछ उसकी शिक्षा तथा उसके भौतिक तथा सामाजिक

1. यूनेस्को द्वारा प्रकाशित, दि रेस कांसेप्ट, पृ. 12
2. वही, पृ. 13

पर्यावरण द्वारा निर्धारित होता है।[1] हम ऊपर बात कर चुके हैं कि गाँधी जी का भी यही मत है। गाँधी जी की भांति वैज्ञानिकों ने ने एक यह निष्कर्ष भी प्रस्तुत किया है कि सांस्कृतिक और सामाजिक विकास को निर्धारित करने में प्रजातीय कारकों अर्थात् आनुवंशिकता का योग बहुत ही कम होता है।[2] इस प्रकार गाँधी जी के प्रजाति सम्बन्धी निष्कर्ष पूर्णरूप से वैज्ञानिक हैं, भले ही उन्होंने वैज्ञानिकों की तरह सीमित प्रयोग न किये हों और प्रयोगशालाओं का उपयोग न किया हो।

3. प्रजातिवाद के अभिशाप का रूप

प्रजातीय विषमता और पृथक्करण की निस्सारता अवश्य सिद्ध हो चुकी है, किन्तु आज भी अनेक सफेद प्रजातियाँ स्वार्थी संकुचित विचारों और दृढ़ पूर्वाग्रहों के कारण प्रजातिवाद के अभिशाप से मुक्त नहीं हो पाई हैं। गाँधी जी ने दक्षिणी अफ्रीका के प्रवास में बहुत सूक्ष्म रूप में यह स्वयं अध्ययन और अनुभव किया था कि प्रजातिवाद किस प्रकार सामाजिक सम्बन्धों को दुष्प्रभावित करता है।

गाँधी जी का मत है कि यह नई जाति–प्रणाली (प्रजातिवाद) भारत की मृतप्राय प्राचीन जाति संस्था से निकृष्ट है। भारत की जाति–व्यवस्था में तो कुछ रक्षक गुण भी है। किन्तु इस नए सभ्य संस्करण (प्रजातिवाद) में तो कोई गुण नहीं हैं। यह बेशर्मी के साथ दावा करती है कि एशियाई और अफ्रीकी सभ्यताओं से रक्षा करने के लिए सफेद सभ्यता को कानूनी दीवालें खड़ी करने की आवश्यकता है।[3] दक्षिणी अफ्रीका में इसी दावे के आधार पर सफेद प्रजातियों ने एशियाई लोगों के विरुद्ध अनेक ऐसे सामाजिक नियम और राजकीय कानून बनाए थे, जिनसे रंगीन और काली प्रजातियों का बहिष्कार होता था, उनका अपमान और दमन होता था, उनका न्यायपूर्ण विकास अवरुद्ध होता था। गाँधी ने इस प्रजातीय पृथक्करण का अत्यन्त प्रामाणिक और विस्तृत वर्णन अपनी आत्मकथा, हरी पुस्तिका, दक्षिणी अफ्रीका के सत्याग्रह के इतिहास, सैकड़ों पत्रों और लेखों में किया है। स्थानाभाव के कारण हम गाँधी जी के एक भाषण से एक ही उद्धरण देंगे, जिससे ज्ञात होगा कि प्रजातीय भेद–भाव के कारण समाज के एक वर्ग को कितने कष्ट भोगने पड़ते

1. वही, पृ. 14
2. यूनेस्को द्वारा प्रकाशित, दि रेस कांसेप्ट, पृ. 16
3. गाँधी, नान वायलेंस इन पीस एण्ड वार भाग 2, 5.15

हैं। ''दक्षिणी–अफ्रीका में भारतीयों के कष्ट दो प्रकार के हैं। पहले व तो जो भारतीयों के खिलाफ जनता की दुर्भावनाओं से पैदा हुए हैं। दूसरे, उन पर लादी गई कानूनी बाधायें और निषेध। पहले की चर्चा की जाए तो दक्षिण अफ्रीका में भारतीय समाज ज्यादा दोष–पात्र जीव है। प्रत्येक भारतीय को बिना फर्क के, तिरस्कार के साथ ''कुली'' कहा जाता है। उन्हें ''सामी'', ''समसामी'' – वास्तव में ''भारतीय'' छोड़ कर सब कुछ कहा जाता है। भारतीय शिक्षकों को ''कुली स्कूल मास्टर'' कहा जाता है। भारतीय वस्तु–भण्डार मालिक ''कुली वस्तु–भण्डार मालिक'' हैं। बम्बई से गये हुए दो भारतीय सज्जन श्री दाया अब्दुला और श्री मूसा हाजी कासिम जहाजों के मालिक हैं। उनके जहाज कुली जहाज हैं। रेलवे और ट्राम के कर्मचारी हमारे साथ पशुओं जैसा व्यवहार करते हैं। हम पैदल पटरियों पर सकुशल चल नहीं सकते। एक बिल्कुल स्वच्छ वस्त्र पहनने वाले मद्रासी सज्जन डर्बन की मुख्य सड़कों की पैदल–पटरियों पर चलना हमेशा टालते हैं, क्योंकि उनको डर है कि कहीं अपमान न कर दिया जाये या धक्के देकर हटा न दिया जाये । हम ''दिल से कोसी जाने लायक एशियाई गन्दगी'' हैं, हम ''गले तक दुर्गुणों से भरे हुए हैं'' और हम ''चावल खाकर जीते हैं'', हम ''गंधैले कुली'' हैं जो ''तेलहे चिथड़े की दुर्गन्ध पर जिन्दगी बसर करते हैं,'' हम ''काले कीड़े'' हैं, कानून की पुस्तक में हमें ''अर्धबर्बर या एशिया की असम्य जातियों के लोग'' बताया गया है, हम ''खरहों के समान बच्चे पैदा करते हैं'' और हाल में डर्बन की एक सभा में एक सज्जन ने कहा था– ''मुझे अफसोस है कि इन्हें खरहों के समान गोली से मारा नहीं जा सकता।'' ट्रान्सवाल में कुछ स्थानों के बीच घोड़ा–गाड़ियां चलती हैं। हम उनके अन्दर बैठ नहीं सकते। इसमें अपमान और अपमान की मंशा तो है ही; इसके अलावा, शीतकाल के भयानक प्रभात में क्योंकि ट्रान्सवाल में बड़ी कड़ी सर्दी पड़ती है या झुलसा देने वाली धूप में, हालाँकि हम भारतीय हैं, गाड़ियों की छत पर बैठना एक घोर परीक्षा है। होटलों में हमें जगह नहीं दी जाती और सचमुच तो ये बातें यहाँ तक गई हैं कि शिष्ट भारतीयों को यूरोपीय स्थानों में नाश्ता पाना भी मुश्किल हुआ है। अभी हाल में नेटाल के डंडी नामक गाँव में यूरोपियों के एक गिरोह ने एक भारतीय वस्तु – भण्डार में आग लगा दी थी। इससे वस्तु–भण्डार को कुछ नुकसान पहुँचा था। एक दूसरे गिरोह ने डर्बन की एक व्यापारिक गली के एक भारतीय वस्तु–भण्डार में जलते हुए पटाखे फेंक दिये थे। यह द्वेष–भावना दक्षिण अफ्रीका के विभिन्न राज्यों के कानूनों में भी उतार दी

गई है। उनके द्वारा तरह–तरह से भारतीयों की स्वतन्त्रता पर बन्दिशें लगा दी गई हैं।''[1] गोरों के इस दुर्व्यवहार का कारण गाँधी जी ने इस प्रकार लिखा है, ''ये घटनायें इसलिये होती हैं कि दक्षिण–अफ्रीका में भारतीयों के खिलाफ भेद–भाव गहरा जमा हुआ है जिसका कारण भारतीयों की शिकायतों के प्रति भारत और ब्रिटेन की सरकारों की उदासीनता है। मारपीट के तमाम मामलों का आमतौर पर हम कोई ख्याल नहीं करते। जहाँ तक हो सकता है, हम 'एक मील कहा तो दो मील जाने' के सिद्धान्त का पालन करते हैं। सहिष्णुता, सच्चे और निष्कपट रूप में, दक्षिण अफ्रिकावासी और खासतौर पर से नेटालवासी भारतीयों का चिह्न है। परन्तु मैं यह कह दूँ कि हम इस नीति का पालन परोपकार के हेतु नहीं, शुद्ध स्वार्थ की दृष्टि से करते हैं। हमने अपने कष्टमय अनुभवों से समझ लिया है कि अपराधियों को न्यायालय में ले जाना बहुत खर्चीला और परेशानी का काम है। फिर उसका परिणाम अक्सर हमारी अपेक्षाओं से उल्टा होता है। अपराधी को या तो चेतावनी देकर छोड़ दिया जाता है, अथवा ''पांच शिलिंग या एक दिन'' के जुर्माने की सजा दी जाती है। कठघरे से निकलने के बाद वही आदमी और भी ज्यादा डराने धमकाने का रुख अख्तियार कर लेता है और शिकायत करने वाले को बड़ी अड़चन की स्थिति में डाल देता है। इस तरह के कारनामे अखबारों में प्रकाशित होते हैं तो दूसरे लोगों को भी वैसी ही हरकतें करने की उत्तेजना मिलती है। इसलिए नेटाल में हम आमतौर पर जनता के सामने इन बातों का जिक्र भी नहीं करते। इस तरह का गहरा जमा हुआ द्वेष–भाव सारे दक्षिण–अफ्रीका में भारतीयों के लिए विशेष रूप से बने कानूनों के रूप में उतारा गया है। इन कानूनों का लक्ष्य वहाँ के भारतीय समाज को नीचे गिराना है। नेटाल का महान्यायवादी (अटनीं जनरल) भारतीयों को सदैव ''लकड़हारे और पनिहारे'' बनाकर रखना चाहता है।''[2]

गाँधी जी ने केवल भारतीयों की समस्या पर ही विचार नहीं किया है, अपितु उन्होंने विश्व की समस्त पीड़ित प्रजातियों को कष्ट–मुक्त करने के लिए आवाज उठाई। अमरीका के नीग्रो, अफ्रीका के आदिवासियों, जर्मनी के यहूदियों की समस्याओं पर समय–समय पर लेख लिखे, उनका मार्ग–दर्शन किया। उनके इस प्रकार के समस्त विचारों के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि प्रजातिवाद के अभिशाप से पीड़ित विश्व की समस्त प्रजातियों की समस्यायें न्यूनाधिक रूप में इस ही प्रकार की हैं। सामाजिक दृष्टि से उन्हें उसी प्रकार

1. सम्पूर्ण गाँधी वाङ्मय, भाग 2, मद्रास का भाषण पृ. 104–105
2. सम्पूर्ण गाँधी वाङ्मय, 2. हरी पुस्तिका, पृ. 89

बहिष्कृत किया जाता है, जैसा उन्होंने स्वयं भारतीयों के सम्बन्ध में ऊपर लिखा है। उनका विचार था, ''भारत की स्वतन्त्रता के द्वारा मैं संसार की तथाकथित कमजोर जातियों को पश्चिम के विनाशक शोषण से मुक्त करना चाहता हूँ।''[1] इसमें संदेह नहीं है कि उनके विचारों से प्रजातिवाद से अभिशप्त प्रजातियों को बहुत बड़ी शक्ति और प्रेरणा प्राप्त हुई।

4. प्रजातिवाद की समस्याओं के समाधान की पद्धति

समन्य रूप से प्रजातिवाद जैसी समस्याओं के समाधान के लिए हिंसा, सशस्त्र युद्ध, विध्वंस, विनाश आदि का सहारा लिया जाता है और इसी को लोग उचित भी समझते हैं। जनता को इन उपायों को अपनाने के लिए तैयार करना भी सरल होता है। लेकिन गाँधी जी ने न तो इस हिंसात्मक मार्ग को उचित समझा और न इसका अनुसरण किया। उन्होंने नया मार्ग दिखाया, नवीन पद्धति का आविष्कार किया। यह पद्धति है ह्रदय–परिवर्तन की। इसमें अपने से घृणा–द्वेष और ईर्ष्या करने वाले को प्रेम करके, उसमें नैतिक चेतना उत्पन्न करके, उसमें सद्भावना जाग्रत करके उसे उचित मार्ग पर लाना होता है। इस प्रणाली के अनुसार अपने विरोधी को कष्ट नहीं पहुँचाया जाता है अपितु स्वयं कष्ट सहन किया जाता है; स्वयं हानि उठाई जाती है लेकिन उसे हानि नहीं पहुंचाई जाती है, स्वयं प्राणोत्सर्ग के लिए प्रस्तुत रहा जाता है किन्तु विरोधी की हिंसा करने का विचार भी मन में नहीं लाया जाता है, मानवीय भौतिक शक्ति पर विश्वास नहीं किया जाता है बल्कि दैवी और आत्मिक शक्ति पर आस्था रखी जाती है। यह पद्धति सत्य और अहिंसा के पूर्ण पालन पर दृढ़ होती है, नीति और न्याय से युक्त साधनों का ही प्रयोग करती है।

दक्षिणी–अफ्रीका में गाँधी जी ने इसी अहिंसक प्रतिकार या अहिंसक नीति का प्रयोग किया था। प्रारम्भ में उन्होंने भारतीयों को यूरोपीय लोगों के समान नागरिक अधिकार प्रदान करने के लिये प्रार्थना–पत्र, आवेदन–पत्र भेजे। जब वहाँ की सरकार ने इन उचित और न्यायपूर्ण मांगों की ओर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया, तो उन्होंने सत्याग्रह का सहारा लिया। सत्याग्रह में सामूहिक रूप से अहिंसक रीति से भारतीयों पर लगाये गए प्रतिबन्धों को तोड़ा जाता था, हड़तालें की जाती थीं, अधिकारियों के समक्ष शान्तिपूर्ण प्रदर्शन किया जाता था। यदि सरकार इन प्रतिबन्धों के भंग करने पर यातना देती थी तो उनको शान्तिपूर्वक सहन

1. गाँधी, यंग इण्डिया, भाग 3, पृ. 548

किया जाता था और यदि सत्याग्रह करने वाले बन्दी बनाए जाते थे तो वे स्वेच्छा से जेलों में चले जाते थे।

दक्षिणी अफ्रीका के सत्याग्रह में गाँधी जी ने सत्याग्रही लोगों के लिए कुछ अनिवार्य नियम निर्धारित किये थे। इन नियमों से स्पष्ट होता है कि वह किस प्रकार का प्रतिकार चाहते थे। ये नियम इस प्रकार हैं –

''1. मैं गिरफ्तार कर लिया जाऊं ऐसा सम्भव था। यदि ऐसा हो, तो भी टुकड़ी अपना कूच जारी रखे और जब तक खुद न पकड लिया जाये, तब तक चलते रहें। रास्ते में खाने और पीने के पानी के लिए व्यवस्था करने का सब प्रयत्न किया जाएगा, फिर भी यदि किसी दिन खाना न मिले, तो संतोष रक्खें। 2. लड़ाई में जब तक रहें शराब आदि का दुर्व्यसन छोड़ दें। 3. मौत आने पर भी पीछे कदम न करें। 4. मार्ग में रात हो जाए तो टिकने के लिए मकानों की आशा न करके घास पर ही पड़े रहने को तैयार रहें। 5. रास्ते में आने वाले पेड़–पौधों को जरा भी नुकसान न पहुंचाया जाये। 6. पुलिस जब गिरफ्तार करने आये तब अपने को पकड़वा लिया जाये। 7. पुलिस से या किसी से मुकाबला न किया जाए, किन्तु जो मार पड़े उसे सहन कर लिया जाए तथा प्रहार के सामने प्रहार करके अपना रक्षण न किया जाए। 8. जेल में जिन कष्टों को भुगतना पड़े उन्हें भुगत लिया जाये और जेल को महल समझ कर वहाँ दिन बिताए जायें।''[1]

गाँधी जी के अहिंसकं प्रतिरोध के उच्च नियमों का पालन कठोर तपस्या है। सामान्यतः विश्वास नहीं होता है कि सामूहिक रूप से इनका पालन कैसे हो सकता है, जब कि विरोधी शस्त्र–शक्ति को प्रयोग करने पर तुला हो। लेकिन नहीं, गाँधी जी ने अपने सिद्धान्त को व्यावहारिकता की दृष्टि से भी खरा सिद्ध किया। दक्षिणी अफ्रीका में इसी प्रकार के सत्याग्रह में हजारों भारतीय सत्याग्रही पूर्ण अहिंसक, अनुशासित और संयमित रहे। इसका प्रमाण सुप्रतिष्ठित अफ्रीकी मूल–निवासी श्री जान डुबे के निम्नांकित वक्तव्य में मिलता है –

''फीनिक्स स्टेशन पर उतर कर अपने यहाँ जा रहा था। कुछ दूर जाने पर रास्ते के एक छोटे से मैदान में प्रायः पांच सौ भारतीय जमा होकर बैठे थे। अपनी कोठी पर हड़ताल

1. प्रभुदास गाँधी, जीवन–प्रभात, पृ. 386

करके वे वहाँ पर आए थे। गोरा मैनेजर, उसके आदमी और गोरी पुलिस उनके चारो ओर घेरा डालकर खड़ी थी। मैं आधे घण्टे तक यह देखने के लिए वहाँ रुका रहा कि क्या अन्जाम होता है। बैठे हुए भारतीयों की पीठ पर कोड़ों की मार पड़ने लगी। गोरे लोग बेंत और लाठी से उन्हें पीटते जाते थे और चीखते जाते थे 'चलो उठो, काम करो, काम पर चलते हो या नहीं', लेकिन कोई उठा नहीं, किसी भारतीय ने उंगली तक नहीं उठाई और ठंडे दिमाग से जबाब देते रहे, ''जब तक गाँधी राजा जेल में हैं तब तक हम काम करने वाले नहीं हैं।'' जब कोड़ों और लाठियों की मार से मामला सुलझा नहीं तब बन्दूक के कुन्दों का प्रयोग हुआ। पुरुषों के साथ–साथ स्त्रियों और बच्चों पर चोटें पड़ने लगीं। कुछ तो 'हाय हाय' करके रो पड़ते थे, किन्तु अपनी जगह से हटते नहीं थे। अन्त में घुड़सवार आए और उन पर घोड़े दौड़ाये गए। कुछ आदमियों के पैर और पीठ के ऊपर घोड़ों की टापें पड़ीं और उनकी चमड़ी छिल गई। घोड़ों की लातों की चोट भी पड़ी लेकिन वे वहाँ से हटे नहीं।''

इसी बीच एक मुकादम को पकड़ करके वहाँ लाया गया। वह इन लोगों का अगुवा माना जाता था। उसने तो और भी साहस के साथ गोरों को उत्तर दिया। उस निर्भीक उत्तर के इनाम के रूप में उस पर बेहद जुल्म किया गया। इस अत्याचार को देख कर मेरे रोंगटे खड़े हो गए। मारपीट से भी जब वह मुकादम झुका नहीं तब पुलिस अफसर ने हब्शी पुलिस से डपट कर कहा, 'देखते क्या हो? बेध डालो इसे अपने भाले से, इसी बदमाश का यह सब षडयन्त्र है।' उस हब्शी पुलिस ने तत्काल आज्ञा का पालन किया और मजदूरों के उस नेता को भाले से बेध डाला। इस घटना से भारतीयों में जोश आ गया। इस बहाने गोली चलाकर और भी दो को भून डाला गया। वह नेता तो स्वर्ग पहुँच गया, दूसरे आहत हुए, फिर भी भारतीय लोग ज्यों के त्यों वहाँ बैठे रहे। उनमें से एक भी भागा नहीं, हटा नहीं।''[1]

इस प्रकार की घटनायें अनेक हुई थीं किन्तु गाँधी जी ने अपने सत्याग्रही लोगों को इस प्रकार की दीक्षा दी थी कि उन्होंने घोर से घोर उत्तेजनात्मक परिस्थिति में भी अपना धैर्य नहीं छोड़ा और अहिंसा के मार्ग से विचलित नहीं हुए। इतना ही नहीं बल्कि अपने विरोधी अंग्रेजों के प्रति पर्याप्त उदार भी रहे। कभी परिस्थितियों का लाभ उठाने का प्रयास

---

1. प्रभुदास गाँधी, जीवन–प्रभात, पृ.301, 302

नहीं किया। उदाहरण के लिए जब उनका सत्याग्रह आन्दोलन पूर्ण वेग से चल रहा था, उसी समय रेलों के कर्मचारियों ने हड़ताल कर दी। ये कर्मचारी अधिकांशतः गोरे थे जो तोड़–फोड़ और हिंसात्मक कार्य भी कर रहे थे। दक्षिण अफ्रीका की सरकार इस नई समस्या से भयंकर संकट में फँस गई थी। भारतीयों का सत्याग्रह आन्दोलन सरकार के लिए बहुत बड़ा सिरदर्द था ही। रेलवे हड़ताली गाँधी जी को खबर भी भेज रहे थे कि आप इस समय अपना आन्दोलन छेड़ दीजिए, हम आप का साथ देंगे, सरकार को झुकना पड़ेगा। गाँधी जी रेलवे हड़तालियों की प्रवृत्ति को अनुचित और अनैतिक समझते थे। अतः उन्होंने उनका सहयोग नहीं लिया, अपितु सरकार से सहानुभूति रखते हुए उन्होंने जो सत्याग्रह पहली जनवरी से प्रारम्भ करने जा रहे थे, उसे दस जनवरी तक के लिए स्थगित कर दिया और सरकार को सूचित कर दिया कि सरकार जब रेलवे–हड़तालियों के कारण संकट में फंसी है, उस समय हम अपना सत्याग्रह प्रारम्भ करके सरकार की कठिनाइयों को बढ़ाना नहीं चाहते हैं। सरकार को रेलवे–हड़ताल की समस्या के समाधान में सुविधा हो, इसलिए दस दिन बाद अपना सत्याग्रह प्रारम्भ करेंगे।[1] गाँधी जी का विचार था कि विरोधी को नष्ट करना, शारीरिक क्षति पहुंचाना, नीचा दिखाना या चिढ़ाना अथवा उसे निर्बल बनाकर विजय प्राप्त करना सत्याग्रह के सिद्धान्त और कार्य–प्रणाली के विपरीत है।[2] वह स्नेह, प्रेम और सेवा द्वारा विरोधी को अपना बनाने के पक्ष में थे। इसीलिए उन्होंने बोअर युद्ध तथा जुलू विद्रोह में अपनी एम्बुलेंस की टुकड़ी के द्वारा अंग्रेजों की सहायता भी की थी। जनरल स्मट्स, जो किसी सीमा तक दमन–चक्र के लिए उत्तरदायी थे, के लिए जेल में दो जोड़ी चप्पल बना कर दिए थे। सारांश यह है कि गाँधी जी ने प्रजातिवाद के अभिशाप से मुक्त होने के लिए अंग्रेजों का प्रतिरोध अवश्य किया, अनेक प्रकार की अमानवीय यावनायें भी सहीं, किन्तु स्वयं उन्होंने मानवता, दया और प्रेम का पल्ला नहीं छोड़ा और अन्ततः अपनी इस अहिंसक और शान्तिपूर्ण नीति से अपने उद्देश्य में सफल हुए। वहाँ की अंग्रेज सरकार को उस समय उनकी समस्त मांगों को स्वीकार करना पड़ा। लुई फिशर ने लिखा है कि दक्षिणी अफ्रीका में गाँधी जी को विजय इसीलिए नहीं प्राप्त हुई थी कि वहाँ की सरकार में लड़ने की शक्ति का ह्रास हो गया था, बल्कि विजय इसलिए हुई थी कि जनरल स्मट्स और वहाँ की सरकार पर गाँधी जी की शान्तिपूर्ण नीति का इतना

1. प्रभुदास गाँधी, जीवन–प्रभात से उद्धृत, पृ. 363
2. लुई फिशर, गाँधी की कहानी, पृ. 48

अच्छा प्रभाव पड़ा था कि उनके हृदय में भारतीयों से लड़ने की इच्छा ही नहीं थी।[1] ''केवल यह कहना ठीक न होगा कि हजारों गिरमिटियों की हड़ताल करने के कारण अथवा सत्याग्रही भाई–बहनों के जेल में भर जाने के कारण ही तीन पौंड कर विरोधी सत्याग्रह में विजय प्राप्त हुई। अधिक तथ्य तो यह है कि अपनी शुद्ध और तेजस्वी बुद्धि तथा अपार उदारता के कारण ही बापू जी ने स्मट्स साहब के हृदय को द्रवित किया और उन्हें नेक नीयत बनाया। यही वजह है कि वह समझौता सफल रहा।''[2] जनरल स्मट्स ने स्वयं स्वीकार किया है कि ''मेरे सिर पर ऐसे कानून पर अमल करवाने का बोझा था, जिसकी पीठ पर दृढ़ लोकमत न था और जिसमें अन्त में, जब कि उस कानून को रद्द करना पड़ा, निराशा मिली। उनके लिए विजयी मोर्चा था। व्यक्तिगत लिहाज की भी कमी न थी, क्योंकि गाँधी जी के तरीके में ऐसी कोई बात नहीं है जिसमें एक विशेष व्यक्तिगत स्पर्श या लिहाज न हो। उसमें (दक्षिणी अफ्रीका की लड़ाई में) घृणा, द्वेष या व्यक्तिगत दुर्भावना का कोई स्थान न था। मानवता की भावना हमेशा विद्यमान थी। और जब लड़ाई खत्म हुई तो ऐसा वातावरण था कि जिसमें अच्छी संधि सम्भव थी। गाँधी जी और मेरे बीच एक समझौता हुआ जिसे पार्लियामेन्ट ने मंजूर किया और जिसके कारण दोनों कौमों में वर्षों शान्ति रही।''[3]

दक्षिणी अफ्रीका के पश्चात् जब–जब किसी राष्ट्र की प्रजातिवाद की समस्या ने गाँधी जी का ध्यान आकर्षित किया, तब–तब उन्होंने वहाँ के पीड़ित–शोषित लोगों को अहिंसक मार्ग अनुसरण करने की सलाह दी।

5. प्रजातिवाद के प्रतिरोध के लिए राष्ट्रों द्वारा अहिंसक पद्धति का अनुसरण

गाँधी जी का प्रयोग दक्षिणी अफ्रीका में किसी सीमा तक सफल हुआ था। अतः विश्व के कुछ अन्य राष्ट्रों की पीड़ित प्रजातियों ने गाँधी जी द्वारा दिखाए गये मार्ग का किसी सीमा तक अनुसरण किया। इसका सबसे ताजा उदाहरण संयुक्त राज्य अमेरिका है। वहाँ पर नीग्रो लोगों के साथ सफेद लोग वही व्यवहार करते हैं, जो दक्षिणी अफ्रीका में अंग्रेज भारतीयों के साथ कर रहे थे। यद्यपि अनेक संघर्षों और प्रयत्नों के पश्चात संयुक्त

1. लुई फिशर, गाँधी की कहानी, पृ0 48
2. प्रभुदास गाँधी, जीवन–प्रभात, पृ0 381
3. राधा कृष्णन् सं0, गाँधी अभिनन्दन ग्रंथ, पृ0 268–269

राज्य अमेरिका की संघ सरकार ने नागरिक अधिकारों के सम्बन्ध में रंग–भेद नीति को समाप्त कर दिया था और गोरे–कालों को समान अधिकार प्रदान कर दिए थे, किन्तु वहाँ सफेद लोगों में प्रजातिवाद की जड़ें इतनी गहरी पहुंच गई थीं कि वे लोग नीग्रो लोगों को व्यावहारिक जीवन में नागरिक अधिकारों को उपयोग करने नहीं देते थे। पीड़ित नीग्रो बन्धुओं ने अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए तथा प्रजातिवाद की पृथक्करण की नीति का अन्त करने के लिए अहिंसक मार्ग का अनुसरण किया और सत्याग्रह की नीति को अपनाया। इस आन्दोलन के सम्बन्ध में 'पीस न्यूज' पत्र में डा0 डेलिंगर ने लिखा था कि इसके नेता बेयर्डरस्टिन, मार्टिन लूथर किंग, जैम्स फार्मर, एलेननाइट जेम्स लासन और ग्लेन स्माइली गाँधी जी की विचारधारा से प्रभावित हैं। विशेषतः गाँधी भक्त नीग्रो डा0 मार्टिन लूथर किंग को तो आज अमेरिका का गाँधी कहा जाता है। डा0 किंग ने गाँधी जी के विचारों का सूक्ष्म अनुशीलन किया है, भारत की यात्रा भी की और उनसे प्रभावित हुए हैं। उन्होंने स्पष्ट लिखा है, "अहिंसक प्रतिरोध की भावना का ज्ञान मुझे बाइबिल और ईसा की शिक्षाओं से हुआ और इसको कार्यान्वित करने की प्रणाली मुझे गाँधी जी से प्राप्त हुई।"[1] दृढ़तापूर्वक घोषित किया, "मेरा निश्चित विश्वास है कि संयुक्त राज्य अमेरिका की प्रजाति–समस्या के समाधान के लिए गाँधी जी का अहिंसक प्रतिरोध का दर्शन ही एकमात्र तर्कसंगत नैतिक उपाय है।"[2] डा0 किंग ने इस प्रणाली को उपयुक्त ही नहीं समझा अपितु उन्होंने इसे व्यावहारिक रूप भी दिया। 1955 को एक रात को नीग्रो विरोधियों ने उनके घर पर बम फेंका। इस दुर्घटना के कारण उनके समर्थकों की बहुत बड़ी भीड़ तथा पुलिस उनके घर के पास पहुँच गई। भीड़ के किसी उत्तेजित व्यक्ति ने पुलिस अफसर से कहा, "अब हम दोनों के पास हथियार हैं, हमें लड़ लेना चाहिए।" इस अवसर पर डा0 किंग ने अपने समर्थकों को सम्बोधित किया, "आपके पास शस्त्र हैं तो उन्हें घर ले जाइए अगर पास न हों, तो उन्हें लाइए नहीं। हम प्रतिहिंसा से समस्या हल नहीं कर सकते। हमें हिंसा का मुकाबला अहिंसा से करना चाहिए। घृणा का मुकाबला प्रेम से करना चाहिए।" इसके उत्तर में एकत्र जन समूह ने समवेत स्वर में कहा, "हम सभी तरह आपके साथ हैं।" इस प्रकार संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रजातिवाद के विरुद्ध अहिंसक प्रतिरोध का श्री गणेश हुआ। इसके उपरान्त विभिन्न राज्यों में विभिन्न प्रकार के अनेक सत्याग्रह हुए और वहाँ

---

1. त्रैमासिक 'गाँधी मार्ग' (अंग्रेजी) जन0 1959, पृ0 19
2. त्रैमासिक 'गाँधी मार्ग' जन0 1959, पृ0 21

अहिंसक प्रतिरोध के समर्थन में प्रबल जनमत का निर्माण हुआ। 29 अगस्त, 1963 को डा0 किंग ने नीग्रो आन्दोलन को विशेष शक्ति दी। उन्होंने इस दिन आजादी की महान् कूच के नाम पर दो लाख नीग्रो तथा उनसे सहानुभूति रखने वाले गोरों का एक जुलूस निकाला जो शान्तिगान गाता हुआ अब्राहिम लिन्कन की मूर्ति के सामने रुका। वहाँ पर नेताओं ने प्रजातिवाद समाप्त करने के सम्बन्ध में भाषण दिए। इस विराट प्रदर्शन को टेलीविजन पर देख कर भूतपूर्व राष्ट्रपति स्व0 कैनेडी ने कहा था कि सभी अमरीकी नागरिकों को समान अधिकार प्राप्त करने में वेगपूर्वक प्रयत्न करना चाहिए। उन्होंने इस दिशा में व्यावहारिक कदम भी उठाया था। रिकन्सिलिएशन पत्र में अपना मत प्रकट करते हुए लिखा था, ''दक्षिणी अमरीका में नीग्रो आन्दोलन के सिलसिले में जो कूच हुई है उससे उत्तरी अमेरिका पर भी प्रभाव पड़ा है........... लोग जिस प्रकार व्यवस्थित एवं अनुशासित रूप में शान्ति के साथ कूच कर रहे थे, उसे देख कर उनके अहिंसात्मक एवं शान्तिपूर्ण आन्दोलन के प्रति प्रशंसा के भाव जागृत हो रहे थे। उनकी समानाधिकार की माँग का औचित्य नागरिकों को जंच रहा था और उनके आन्दोलन के प्रति स्वाभाविक सहानुभूति उत्पन्न हो रही थी।'' आज वहाँ पर प्रजातीय पृथक्करण की भावना शिथिल हुई है। नीग्रो लोगों को अनेक नागरिक अधिकार व्यवहार रूप से प्राप्त हुए हैं। अब अनेक गोरे लोग भी नीग्रो लोगो की मांगों का समर्थन करने लगे हैं, भेद–भाव समाप्त करने पर जोर दे रहे हैं। यह गाँधी जी की अहिंसात्मक नीति की सफलता और व्यावहारिकता का महत्त्वपूर्ण उदाहरण और प्रमाण है।

प्रजातिवाद के प्रतिरोध के लिए नार्थ रोडेशिया के अधिवासियों ने भी अहिसात्मक मार्ग को ही उपयुक्त माना, जो 'पीस न्यूज' पत्र की इस सूचना से स्पष्ट होता है –

''नार्थ रोडेशिया के नए संविधान के विरुद्ध निष्क्रिय प्रतिरोध आन्दोलन करके ब्रिटिश साम्राज्यवाद की जड़ें हिला देने की घोषणा करते हुये अफ्रीकी कैनेथ काउडा ने एक सूचना प्रकाशित कराई है। उनका कहाना है कि ब्रिटेन ने उत्तरी रोडेशिया पर जो संविधान लादने की कोशिश की है, उससे गोरों का प्रभुत्व जमा रहता है और अफ्रीकावासी अधिकारों से वंचित रहते हैं। दो हजार अफ्रीकी प्रतिनिधियों की सभा ने जिसमें श्री काउडा ने उपर्युक्त घोषणा की है, उन्हें आन्दोलन आरम्भ करने का अधिकार भी दिया है। पहले यह सन्देह था कि उनके अनुयायी अहिंसात्मक आदोलन स्वीकार करेंगे या नहीं, परन्तु अब तो श्री काउडा

ने उन्हें उसका विश्वास दिया है कि यह अहिंसात्मक आन्दोलन ही उनके लिए कल्याणकारी सिद्ध होगा, भले ही ऐसा करते हुए जेल जाना पड़े।'' अगले अंक में उक्त पत्र ने यह सूचना प्रसारित की थी, ''लु साका (टांगानिका) में विश्व शान्ति परिषद के 3000 स्वयं सेवक इस तैयारी में लगे हैं कि उन्हें जब भी आदेश मिले, सत्याग्रह के लिए आगे बढ़ जायें। इस स्वयं सेवकों के कन्धे से बन्दूक नहीं, बाइबिल लटकती मिलेगी। यह दल अहिंसात्मक रूप में और शान्तिपूर्वक कूच करेगा और कूच का नाम 'आजादी कूच' होगा।'' इस आन्दोलन के नेता श्री काउडा ने 'पीस न्यूज' के सम्वाददाता के प्रश्न का उत्तर देते हुए पूर्ण अहिंसा पर निश्चित आस्था व्यक्त की थी और इसी मार्ग को एकमात्र उपयुक्त मार्ग कहा था।

इस प्रकार हम इस अध्याय में देखते हैं कि गाँधी जी ने प्रजातिवाद को विश्व की अत्यन्त अमानवीय और भौतिक समस्या के रूप में अनुभव किया। वह स्वयं तथा उनके अनुयायी इसके भीषण विष से संतप्त हुए। उन्होंने भेद–भाव का यह प्रचुर गरल शिव की भांति कण्ठस्थ करके अहिंसक प्रतिरोध का विचार–अमृत प्रजातीय भेद से पीड़ित मानवता को प्रदान किया जो आज देश काल की सीमायें तोड़ कर विश्व की विभिन्न प्रजातियों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर रहा है।

2

गाँधी : जाति और समाज

1. प्रारम्भिक

जाति–व्यवस्था समाजशास्त्रियों के अध्ययन का बहुत प्रिय विषय रहा है। डा. जे.एच. हट्टन ने सन् 45 में लिखा था कि अमेरिका के एक विद्वान ने यह दावा किया है कि उसने जाति–व्यवस्था पर प्रकाशित पांच हजार से अधिक रचनाओं की सूची संकलित की है।[1] सन् 45 के बाद भी सैकड़ों लेख और ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। इससे सहज में ही अनुमान लगाया जा सकता है कि जाति–व्यवस्था सामाजिक विचारक और सुधारक के लिए कितनी महत्त्वपूर्ण है। गाँधी जी सूक्ष्म सामाजिक चिन्तक हैं, अतः उनकी दृष्टि से भी यह विषय उपेक्षित नहीं है। उन्होंने भी इस सामाजिक संस्था के विभिन्न पक्षों पर अपना अभिमत व्यक्त किया है।

प्रायः देखा जाता है कि लोग 'वर्ण' और 'जाति' को एक दूसरे के पर्याय के रूप में प्रयोग करते हैं, किन्तु इस प्रकार का प्रयोग भ्रामक और अवैज्ञानिक है। समाजशास्त्री इन दोनों में पर्याप्त अन्तर मानते हैं। गाँधी जी भी इन समाजशास्त्रियों के मत के समर्थक हैं।[2] यद्यपि उन्होंने अनेक स्थलों पर जाति को वर्ण के पर्याय के रूप में प्रयोग कर दिया है; किन्तु अनेक बार स्पष्ट भी किया है कि वह जाति और वर्ण को एक नहीं मानते हैं।[3] इसीलिए हम गाँधी जी के जाति और वर्ण सम्बन्धी विचारों को दो पृथक्–पृथक् अध्यायों में प्रस्तुत कर रहे हैं।

2. जाति–व्यवस्था की विशेषताएं

विश्व के विभिन्न समाजशास्त्रियों और मानवशास्त्रियों ने अपने–अपने दृष्टिकोण से जाति की परिभाषाएँ की हैं। ई.ए.एच. ब्लण्ट ने लिखा, ''जाति एक अन्तर्विवाह वाला वर्ग या अन्तर्विवाह करने वाले समूहों का समुच्चय है, जिसका एक सामान्य नाम है, जिसकी सदस्यता वंशानुगत होती है, जो अपने सदस्यों के सामाजिक सम्पर्क पर कुछ प्रतिबन्ध

---

1. जे, एच, हट्टन, कास्ट इन इण्डिया, भूमिका
2. गाँधी, हरिजन, दि0 6.3.35
3. गाँधी, यंग इण्डिया, दि0 29.12.20, पृ0 3

लगाती है, एक सामान्य–वंश पराम्परागत व्यवसाय को अपनाती है अथवा एक सामान्य उत्पत्ति का दावा करती है और सामान्यतः एक सजातीय समुदाय का निर्माण करने वाली समझी जाती है।''[1] श्री ए. के. दत्त ने जाति की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए लिखा है कि एक जाति के सदस्य बाहर विवाह सम्बन्ध नहीं कर सकते हैं, अन्य जातियों के लोगों के साथ भोजन करने और पानी पीने के सम्बन्ध में इसी प्रकार के लेकिन कुछ कम कठोर नियन्त्रण हैं, अनेक जातियों के कुछ निश्चित व्यवसाय हैं, जातियों में संस्तरणात्मक श्रेणियाँ हैं, सर्वोपरि ब्राह्मण की सर्वोत्तम स्थिति है; मनुष्य की जाति का निर्णय जन्म से होता है, यदि वह नियमों के भंग करने के कारण जाति से बाहर न निकाल दिया गया हो तो एक जाति से दूसरी जाति में परिवर्तन होना सम्भव नहीं है।''[2] एस. वी. केतकर ने लिखा है, ''जाति एक सामाजिक वर्ग है, जिसकी दो विशेषताएँ हैं (1) इसकी सदस्यता उन्हीं लोगों तक सीमित होती है, जो इसमें उत्पन्न हुए हैं तथा इस प्रकार से उत्पन्न समस्त व्यक्ति उसके अन्तर्गत आते हैं। इसके सदस्यों को कठोर सामाजिक कानूनों के द्वारा वर्ग के बाहर विवाह करना निषिद्ध है। इन समस्त वर्गों के विशेष नाम होते हैं, जिसके द्वारा वे पुकारे जाते हैं।''[3]

उक्त परिभाषाओं का विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि भारतीय जाति–व्यवस्था की मुख्य रूप से निम्नांकित विशेषताएँ हैं :

(1) जाति का आधार जन्म है। (2) इसमें विवाह सम्बन्धी प्रतिबन्ध होते हैं। (3) इनमें भोजन और जल के ग्रहण करने के लिए नियम और निषेध हैं। (4) इसमें ऊँच–नीच का भेद–भाव प्रचलित है। (5) इसमें व्यक्ति के व्यवसाय का निर्धारण जन्म से होता है। (6) इसमें भिन्न–भिन्न जाति के लोगों के साथ भिन्न–भिन्न प्रकार की सामाजिक–धार्मिक निर्योग्यताएँ होती हैं। (7) इसमें चार वर्णों के अतिरिक्त एक पंचम वर्ण अस्पृश्यों का भी उत्पन्न हो गया है। (8) इसमें सामाजिक स्तरण के साथ–साथ आर्थिक विषमता भी देखने को मिलती है, अर्थात् ऊँची जातियों की आर्थिक स्थिति अच्छी रहती है और नीची जातियों की आर्थिक स्थिति बुरी रहती है।[4]

1. ई.ए.एच. ब्लण्ट, सोशल सर्विस इन इण्डिया, पृ0 8
2. गाँधी, वर्ण–व्यवस्था, पृ0 13
3. वही, पृ0 59
4. डा0 जी0 एस0 घुरिए, कास्ट एन्ड क्लास इन इन्डिया, पृ0 17

जाति–व्यवस्था की उक्त विशेषताओं में कुछ परिवर्तन हुए हैं, उनकी कठोरता में कुछ शिथिलता आई है, लेकिन उनका पूर्ण रूप से लोप नहीं हुआ है। भारत के गाँवों में जाति–प्रथा का उक्त रूप बहुत स्पष्ट देखने को मिल सकता है।

3. जाति : अवनति का लक्षण और प्रगति की बाधक

गाँधी जी ने हिन्दू समाज की इस जाति–व्यवस्था को समाज की व्याधिकीय (Pathological) स्थिति के रूप में देखा है। उनके अनुसार वह समाज की विघटित (Disorganised) अवस्था की सूचक है। यह समाज की विचारणीय समस्या है, जो समाज की वास्तविक प्रगति के लिये बाधक है, जिसका निराकरण और निवारण समाज के लिए सर्वथा कल्याणप्रद होगा। गाँधी जी के शब्दों में, "आजकल जाति संयम के रूप में नहीं, बल्कि बंधन के रूप में पायी जाती है। संयम मनुष्य को शोभा देता है और स्वतंत्र करता है; बंधन बेड़ी बनकर फिक्र में डालता है। आजकल जाति का जो अर्थ किया जाता है, वह कोई चाहने लायक या शास्त्रीय अर्थ नहीं है। आज जिस अर्थ में यह इस्तेमाल होता है, उस अर्थ में जाति जैसा शब्द ही शास्त्र नहीं जानते। वर्ण हैं और चार हैं। लेकिन जातियाँ बेशुमार हैं और उनमें भी दल बन गये हैं, जिनमें बेटी व्यवहार बन्द होता जा रहा है। यह उन्नति नहीं अवनति की निशानी है।"[1]

गाँधी जी ने जाति–व्यवस्था की उक्त सामान्य आलोचना करके सन्तोष नहीं किया, अपितु उन्होंने वर्तमान जाति–व्यवस्था के विभिन्न लक्षणों पर विस्तारपूर्वक और सूक्ष्म रीति से विचार व्यक्त किए। यहाँ पर उनके इन विचारों का विश्लेषण कर लेना उचित होगा।

जाति–व्यवस्था की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता यह मानी गई है कि किसी व्यक्ति की जाति का निर्धारण जन्म से ही होता है। जो जिस जाति में जन्म लेता है, आजीवन उसकी जाति वही रहती है। कोई व्यक्ति अपने जीवन में अपनी जाति परिवर्तित नहीं कर सकता है। हाँ, यदि कोई उच्च जाति का व्यक्ति ऐसे बुरे काम करता है, जिसके कारण उसकी जाति के लोग उसे जाति से बहिष्कृत कर देते हैं, तो वह नीची जाति का सदस्य हो सकता है; बशर्ते नीची जाति के लोग उसे अपनी जाति में सम्मिलित कर लें। गाँधी जी जाति के जन्म–सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं; लेकिन दूसरे ढंग से। यों, तो वह

---

1. गाँधी, वर्ण–व्यवस्था, पृ0 99।

जाति–व्यवस्था को वर्ण–सिद्धान्त को स्वीकार किया जाए, तो उसमें प्रत्येक व्यक्ति के वर्ण का निर्धारण जन्म से ही होना चाहिए। ''वर्ण का जन्म के साथ अनिवार्य नहीं तो नजदीक का सम्बन्ध अवश्य है।''[1] इसी बात को उन्होंने अधिक स्पष्ट शब्दों में कहा ''मैं जन्म से होने वाले वर्ण के बटवारे को मानता हूँ। अगर ऐसा न होता, तो वर्ण–व्यवस्था का कुछ भी अर्थ नहीं होता है; वर्ण–व्यवस्था से जरा भी फायदा न होता और निरा शब्द जाल रह जाती। पर जन्म–सिद्ध वर्ण कैसे? यह मेरी कोई जेब से निकाली हुई बात नहीं है। वर्ण–विभाग की जड़ में ही जन्म है।''[2] वास्तव में गाँधी जी ने वर्ण सिद्धान्त को हिन्दू ग्रंथों, विशेषतः गीता से ग्रहण किया है। हिन्दू शास्त्रों ने जन्म–सिद्धान्त पर विशेष बल दिया है और गाँधी जी को इसमें औचित्य अनुभव होता है, इसलिए अप्रत्यक्ष रूप से यह माना जा सकता है कि गाँधी जी को जाति–व्यवस्था के जन्म–सिद्धान्त से कोई आपत्ति नहीं है।

जाति–व्यवस्था का दूसरा मुख्य और मूलभूत सिद्धान्त अन्तः–विवाह है। डा. जी0एस0 घुरिए का मत है कि अन्तर्विवाह का कठोर सिद्धान्त जाति–समाज का इतना प्रभावशाली पक्ष है कि समाजशास्त्री इसे जाति–व्यवस्था का प्राण तत्त्व मानते हैं।[3] इस नियम के अनुसार एक पुरुष को अपनी जाति के अन्तर्गत ही विवाह करना चाहिए। रूढ़िवादी हिन्दू समाज में यदि कोई व्यक्ति अपनी जाति से अलग विवाह करता है तो उसका जाति से बहिष्कार हो जाता है। गाँधी जी जाति–व्यवस्था के इस सिद्धान्त को अनिवार्य रूप से स्वीकार नहीं करते हैं। वह कहते हैं कि जाति के मूल सिद्धान्त ''वर्णाश्रम'' में अन्तरजातीय विवाह या खान–पान की न कोई मनाही थी, और न होनी चाहिए। फिर भी इस मामले में जबरदस्ती नहीं हो सकती। यह व्यक्ति की अपनी मरजी पर छोड़ दिया जाना चाहिए कि वह कहाँ शादी करे या खाए।[4] लेकिन इस सम्बन्ध में वह यह भी प्रतिबन्ध लगाते हैं कि ऐसे अन्तरजातीय विवाह वासना–तृप्ति और भौतिक सुख प्राप्त करने के लिए नहीं करने चाहिए, अपितु सद्‌भावना और सद्‌उद्देश्य से प्रेरित होकर ही करने चाहिए। ''हरेक इन्सान में सेवा–भाव कितना है, आखिर इसी पर तो ऐसी शादियों की कसौटी होगी। सेवा–भाव के आधार पर हुई हरेक शादी से हरिजन–सवर्ण ब्याह की तरफ

1. एन.के. दत्त, ओरिजिन एण्ड ग्रोथ आफ कास्ट इन इण्डिया, पृ0 8
2. एस.बी. केतकर, हिस्ट्री आफ कास्ट इन इण्डिया, पृ0 15
3. देखिए, शम्भूरत्न त्रिपाठी, भारतीय संस्कृति और समाज, पृ0 130
4. गाँधी, हरिजन, 25.7.36

तिरस्कार कम होगा।'' लेकिन वह पारस्परिक सद्भावना के लिए अन्तरजातीय विवाहों को अनिवार्य नहीं मानते हैं, और यह भी नहीं मानते हैं कि जो अन्तरजातीय विवाह करते है, वे पाप करते हैं, या धर्म–भ्रष्ट हो जाते हैं। ''हिन्दुओं में भाई–भाई के बच्चे एक–दूसरे के साथ ब्याहे नहीं जाते हैं। इससे उनके आपस के प्रेम में खलल नहीं पड़ता। उल्टे उनका यह रिवाज उनके आपसी सम्बन्ध को और भी पवित्र और शुद्ध बनाता है। ये बातें सिर्फ संयम और तालीम से सम्बन्ध रखती हैं। खुद इनमें कोई दोष नहीं है। इसमें अति घुस जाए, तो वह जरूर नुकसानदेह हो सकती है। और तिस पर अगर ऊँचेपन के घमंड में वैसा किया जाए तो वह संयम संयम न रहकर दरअसल मनमानी ही बन जाता है, और इस कारण घातक साबित होता है। मगर जमाना जैसे–जैसे आगे बढ़ता जाएगा, और नई नई जरूरतें और बातें पैदा होती जायेंगी, वैसे–वैसे रोटो–बेटी के व्यवहार के बारे में बहुत ही सावधानी के साथ हमें सुधार और फेरफार अवश्य करने पड़ेंगे।''[1]

गाँधी जी के अन्तरजातीय विवाह सम्बन्धी उपर्युक्त विचारों को पढ़ने के पश्चात् सम्भवतः कुछ पाठकों के मन में यह सन्देह उत्पन्न होता हो कि वह कुछ स्पष्ट नहीं कहते हैं – वह एक साथ अन्तरजातीय विवाह का समर्थन और विरोध करते हैं। लेकिन वास्तविकता यह नहीं है। वस्तुतः वह व्यावहारिक मार्ग प्रस्तावित करते हैं। वह समाज को अतिवादी मार्ग की ओर नहीं ले जाना चाहते हैं अर्थात् वह न तो स्वार्थी या निर्बल और भावुक व्यक्तियों को इतनी छूट देने के पक्ष में हैं कि वे मनमानी करके समाज में अव्यवस्था फैलाएँ और न इतने अनुदार होना चाहते हैं कि परिवर्तनशील और विकासशील समाज जंजीरों से जकड़–सा जाये। इन दोनों अतिवादी व्यवस्थाओं ने समाज को बहुत हानि पहुँचायी है। जाति–व्यवस्था ने विवाह के सम्बन्ध में अपनी कठोर और अतिवादी रूढ़ि के द्वारा समाज को इस तरह जकड़ रखा था कि समाज का ढांचा चरमराने लगा था, टूटने लगा था। इस रूढ़ि के पीछे संयम या धर्म का विचार नहीं था, बल्कि ऊँच–नीच और अहम् की भावना मुख्य थी, जिससे सामाजिक विषमता और अन्याय को प्रश्रय प्राप्त हो रहा था तथा अन्य प्रकार की सामाजिक समस्यायें उत्पन्न हो रही थीं।

गाँधी जी भावुक और आतुर समाज–सुधारकों की तरह अन्तरजातीय विवाहों का अन्ध–समर्थन नहीं करते हैं और न जन–सामान्य को आँख बन्द करके दूसरी जाति में

---

1. गाँधी, नवजीवन, 12.12.20

विवाह करने को प्रोत्साहित करते हैं। केवल अन्तरजातीय विवाह करने में तो ऊपरी परिवर्तन होता है। वह तो आन्तरिक और स्थायी परिवर्तन के लिए विवाह सम्बन्धी सामाजिक मूल्यों, विचारों और आदर्शों के परिवर्तन के पक्ष में है। इसलिए वह मध्यम मार्ग का अनुसरण करते हैं– भोग वादियों और फैशनबाजों से कहते हैं कि अन्तरजातीय विवाह के बिना भी विभिन्न वर्गों में सद्भावना हो सकती है और रूढ़िवादियों से कहते हैं कि इतर जाति में विवाह करने से पाप नहीं होता है, धर्म भ्रष्ट नहीं होता है। वास्तव में वह अनुभव करते हैं कि हजारों वर्षों से चली जाने वाली कठोर जाति प्रथा के नियमों को आकस्मिक रूप से नष्ट नहीं किया जा सकता है और यदि ऐसा करने का दुस्साहस किया जाएगा, तो समाज में अव्यवस्था और अराजकता उत्पन्न हो जाएगी। इस सम्बन्ध में स्वदेशी और विदेशी समाजशास्त्री भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं।[1]

जाति–व्यवस्था की तीसरी विशेषता है, भोजन और जल ग्रहण करने के सम्बन्ध में कठोर नियमों का पालन होना। इस सम्बन्ध में बड़े कठोर नियम बन गये थे, जिनके अनुसार यह निश्चित किया जाता है कि किन जातियों के लोगों के हाथ का बनाया भोजन ग्रहण किया जा सकता है और किन जातियों का छुआ पानी पिया जा सकता है। इस व्यवस्था में ब्राह्मणों की सर्वोपरि स्थिति है, अर्थात् उनके हाथ का भोजन और जल समस्त जातियाँ स्वीकार करती हैं और इसके विपरीत हरिजनों की स्थिति निम्नतम है, जिनका छुआ भोजन और जल ऊपर की जातियाँ नहीं स्वीकार करेंगी। यदि कोई व्यक्ति इन नियमों का उल्लंघन करता है तो धर्म–भ्रष्ट हो जाता है, अपवित्र हो जाता है और अपनी जाति से निकाला भी जा सकता है। गाँधी जी जाति–व्यवस्था की इस खान–पान सम्बन्धी कठोरता के समर्थक नहीं हैं। वह इसे सामाजिक दोष मानते हैं। इस व्यवस्था की भर्त्सना करते हुए वह कहते हैं, ''आज रोटी–बेटी के व्यवहार की हदबन्दी में वर्ण–धर्म का पालन समाया हुआ है। ब्राह्मण ब्राहमण के साथ और उससे भी कट्टर हो तो अपनी ही उपजाति के साथ ही रोटी–बेटी का व्यवहार रखेगा और उसी में अपने धर्म की इति श्री मानेगा। उत्तर में कहावत है 'आठ कनौजिये नौ चूल्हे।' यह है धर्म–पालन! सब एक दूसरे के छूने से नापाक हो जाते हैं। यहाँ मेरे कहने का मतलब यह बिल्कुल नहीं है कि रोटी–बेटी व्यवहार की मर्यादा या खान–पान के विवेक की गुंजाइस ही नहीं है। मैं खुद हर किसी के

1. देखिए 'ओ. जी मर्फी कृत इन दि माइण्ड्स आफ मेन, पृ0 42 तथा प्रो0 घुरिए फैलिसिटेशन वाल्यूम में आई.पी. देसाई और वाई. जी. डैम्ले का लेख ''नोट आन दि चेंज इन दि कास्ट।''

साथ सब कुछ खाने का धर्म न मानता हूँ, न पालता हूँ। मैं मानता हूँ कि सफाई वगैरा के नियमों को पालते हुए और खान–पान में विवेक करते हुये सब वर्ण के लोग एक पंगत में बैठकर खायें तो कोई दोष नहीं है। पुराने जमाने में इस तरह रोटी–बेटी व्यवहार के बहुत से सबूत हैं। रोटी–बेटी व्यवहार को वर्ण–धर्म के साथ जोड़ देने से हिन्दू धर्म को भारी नुकसान पहुँचा है।''[1] उन्होंने अपने मत का स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है, ''निरामिष सवर्ण हरिजन के घर में निरामिष आहार जरूर ले सकता है। भोजन–व्यवहार के मानी यह कभी नहीं हो सकते कि जो कुछ मिले, सो खा लिया जाए। यह जरूरी है कि खाना और बरतन साफ हों, और खाना साफ हाथों से पकाया हुआ हो। यही नियम पानी के लिये भी होना चाहिये। सहयोग के यह भी मानी नहीं कि हम एक थाली में खायें या एक ही गिलास से बगैर उसे साफ किये पानी पिएं।''[2] गाँधी जी के उपर्युक्त विचारों से स्पष्ट होता है कि वह भोजन और जल के ग्रहण करने से सम्बन्धित प्रचलित निषेधों में कोई औचित्य अनुभव नहीं करते हैं। वह इनको राष्ट्रीय एकता और सामाजिक सहयोग के लिए बाधक मानते हैं। उनको इन नियमों से उतनी आपत्ति नहीं है, जितनी इन नियमों की भावना से। जाति–व्यवस्था के अन्तर्गत इन नियमों का पालन स्वच्छता और स्वास्थ्य की दृष्टि से नहीं किया जाता है, अपितु इनके पीछे ऊँच–नीच का भाव, पाप–पुण्य का विचार ही प्रमुख होता है। चूंकि गाँधी जी मानवीय–समानता के पक्ष–पोषक हैं, इसलिए वह पंक्ति–भेद का खण्डन करते हैं। लेकिन वर्तमान सामाजिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए वह इन निषेधों के उन्मूलन में हठ, दुराग्रह या शक्ति का प्रयोग नहीं चाहते हैं। वह नीची और ऊँची दोनों जातियों को आगे बढ़ने के लिए कहते हैं। नीची जातियां अपने रहन–सहन, खान–पान आदि में स्वच्छता लायें और ऊँची जातियां अपने हृदयों से तिरस्कार का भाव समाप्त करें।

जाति–व्यवस्था की चौथी विशेषता संस्तरण व्यवस्था है, जिसके अनुसार सीढ़ी के डंडों की तरह ऊँची–नीची जातियां हैं। ब्राह्मणों का स्थान सबसे ऊपर है और अस्पृश्य शूद्र सबसे नीचे होते हैं, और बीच में अनेक जातियां क्रमशः होती हैं। यह ऊँच–नीच का भेद अपरिवर्तनीय होता है। जो व्यक्ति ऊँची जाति में उत्पन्न हुआ है, वह चाहे जितने बुरे और अनैतिक कार्य करे, लेकिन उसका स्थान समाज में ऊँचा ही रहेगा और नीची जाति का व्यक्ति चाहे जितने अच्छे कर्म करे, लेकिन उसका सामाजिक स्तर नीचा ही रहेगा। यह

1. गाँधी, वर्ण–व्यवस्था, पृ0 15
2. गाँधी, भाषण–नई दिल्ली, 6 अप्रैल, 1946

ऊँच–नीच का भेद बहुत जटिल है। केवल एक जाति दूसरी जाति से ऊँची या नीची नहीं है, अपितु एक जाति के अन्तर्गत भी ऊँच–नीच के अनेक भेद–उपभेद हैं। उदाहरण के लिये ब्राह्मणों में बीघा–विश्वा के आधार पर अनेक भेद हैं। इस भेद–भाव से खान–पान विवाह आदि की अनेक जटिल सामाजिक समस्यायें उत्पन्न होती हैं। सबसे अधिक अवांछनीय बात यह है कि ऊँची जातियां अपने से नीची जातियों को हीन दृष्टि से देखती हैं, थोथे अभिमान को व्यक्त करती हैं, मिथ्या आडम्बर का प्रदर्शन करती हैं। इन सबसे पीछे जन्म सिद्धान्त रहता है, गुण तथा कर्म का महत्त्व लोप हो जाता है।

गाँधी जी ने जाति–व्यवस्था के उक्त पक्ष पर अपना मत प्रकट करते हुए लिखा, ''बहुत समय से हिन्दू धर्म के नाम पर ऊँच–नीच के भेद हुए हैं। यह वर्ण धर्म का टेढ़ा रूप है, भयंकर रूप है। हमारे पुरखों ने कठिन तपस्या से जिस बड़े कानून को ढूंढ निकाला था और जिस पर भरसक अमल किया था, उसका अनर्थ करके आज हमने उसे दुनिया के लिए हँसी की चीज बना दिया है। आज वर्ण के नाम पर जो हालत पायी जाती है, उसमें तो हिन्दू जाति का नाश है।'' गाँधी जी की मान्यता है कि समाज का कोई व्यवसाय एक दूसरे से ऊँचा या नीचा नहीं है; बशर्ते वह व्यक्ति या समाज की नीति–विरुद्ध न हो। समाज में ब्राह्मण और भंगी के व्यवसाय समान स्तर के हैं; क्योंकि मूल रूप से व्यवसायों का वितरण कर्त्तव्य के आधार पर किया गया है अर्थात् प्रत्येक वर्ण का व्यक्ति अपने निर्धारित व्यवसाय को कर्त्तव्य या धर्म मानकर सुचारु रूप से सम्पन्न करे। लेकिन ''हिन्दू धर्म के विकास–क्रम में किसी समय उसमें गंदे रिवाज घुस गए और ऊँच–नीच की सड़ांध ने बैठकर उसे बिगाड़ दिया। लेकिन ऊँच–नीच का ख्याल हिन्दू धर्म में सब जगह फैली हुई त्याग की भावना से बिल्कुल बेमेल मालूम होता है। जीवन की इस व्यवस्था की बुनियाद अहिंसा पर खड़ी है और हर प्राणी के लिए शुद्ध प्रेम इसका असली रूप है, उसमें किसी भी वर्ग को दूसरे से ऊँचा मानने की गुंजाइश ही कहाँ हो सकती है?''

गाँधी जी के उक्त मत को सैद्धान्तिक आधार पर संक्षेप में कहना चाहें तो हम कह सकते हैं कि वे अद्वैत के सिद्धान्त के पोषक हैं, जिसके अनुसार संसार का प्रत्येक व्यक्ति समान स्तर पर जन्म लेता है; कोई व्यक्ति जन्म से विशेष अच्छाई लेकर नहीं आता है। इसलिए समाज में जन्म के आधार पर ऊँच–नीच का भेद करना प्राकृतिक नियम के विरुद्ध

है। चूंकि जाति–व्यवस्था इस नियम के बिल्कुल विपरीत चलती है, अतः यह इसका दोष है।

जाति–व्यवस्था का पांचवा लक्षण है व्यवसायों का जन्म के साथ निर्धारण, अर्थात् जो जिस जाति में जन्म ले वह अपनी जीविका उपार्जित करने के लिए अपनी जाति के व्यवसाय को ही स्वीकार करे। उदाहरण के लिए लोहार के घर में जो जन्म ले वह लोहार का ही व्यवसाय करे, ब्राह्मण का नहीं। गाँधी जी जाति–व्यवस्था के इस नियम का समर्थन करते हैं। वह मानते हैं कि जन्म से व्यवसाय निर्धारण करने का नियम वर्ण–सिद्धान्त से लिया गया है। इसकी व्याख्या करते हुए वह कहते हैं, ''जो आदमी जिस खानदान में पैदा हो उसका धन्धा, अगर वह नीति के खिलाफ न हो तो, धर्म भाव से करे और उसे करते हुए जो आमदनी हो, उसमें से मामूली गुजर के लायक रखकर बाकी को सार्वजनिक भलाई में लगा दे।''[1] वर्ण धर्म का मतलब यही है कि हर मनुष्य अपने बाप–दादे के गुजारे के साधन से सन्तुष्ट रहे। इस योजना की जड़ में अहिंसा है, ईश्वर के कानून की जानकारी है, शुद्ध अर्थशास्त्र है, मानवता है। इस वर्ण–धर्म पर अमल न हुआ, तो जैसा कभी न हुआ, वैसा गृह–युद्ध होने वाला है। जैसे–जैसे करोड़ों में जागृति आयेगी, वैसे–वैसे सब धनवान बनना चाहेंगे, सब बड़े बनना चाहेंगे और ऊँच–नीच का ख्याल ज्यादा से ज्यादा फैलेगा। मुझे तो लगता है कि इसका नतीजा आपस की मारकाट के सिवा और कुछ न होगा।[2]

वर्तमान काल की जाति–व्यवस्था में प्रायः लोग व्यवसायों के सम्बन्ध में वर्ण–धर्म के अनुशासन का पालन नहीं करते हैं। अधिकांश, जिस व्यवसाय में अधिक लाभ होने की आशा होती है, उसे अपना लेते हैं, और अपनी जाति के निर्धारित व्यवसाय को त्याग देते हैं। गाँधी जी को जाति–व्यवस्था के इस वर्तमान रूप से असन्तोष है। वह इसे सामाजिक विघटन का लक्षण मानते हैं। वह इस समस्या के समाधान के लिए वर्ण–व्यवस्था के रूप में जाति–व्यवस्था को देखना चाहते हैं। उनका मत है ''आर्थिक दृष्टि से इसका किसी समय बहुत बड़ा महत्त्व था। इसमें परम्परागत कौशल की रक्षा होती थी। इसमें आपसी प्रतिस्पर्द्धा मर्यादित होती थी। यह दरिद्रता का सबसे अच्छा इलाज था और इसमें व्यवसाय–संघों के तमाम फायदे मौजूद थे। इतिहास की दृष्टि से कहें तो जाति को भारतीय समाज की

1. गाँधी जी, वर्ण–व्यवस्था, पृ0 16
2. गाँधी जी, हरिजन–बन्धु, 1.10.33

प्रयोगशाला में मनुष्य का प्रयोग या सामाजिक मेल बिठाने का प्रयत्न माना जा सकता है, यदि हम इसे सफल सिद्ध कर सकें तो संसार के सामने हृदयहीन स्पर्द्धा और लोभ या लालच से पैदा होने वाले सामाजिक विग्रह के उत्तम उपाय के तौर पर हम इसे पेश कर सकते हैं।''[1]

जाति–व्यवस्था का छठा लक्षण भिन्न–भिन्न जाति के लोगों के साथ भिन्न–भिन्न प्रकार की धार्मिक और सामाजिक निर्योग्यताओं का संलग्न होना है। समाज–वैज्ञानिकों का मत है कि विभिन्न जातियों की निर्योग्यताएँ उनके व्यवसायों के आधार पर होती हैं। छोटी जातियों के छोटे कार्य हैं और उनकी इसी प्रकार अधिक निर्योग्यताएँ हैं, और बड़ी जातियों के अच्छे कार्य हैं और उसी के अनुपात में उनकी कम निर्योग्यताएँ हैं। ये निर्योग्यताएँ अनेक प्रकार की हैं।

जाति–व्यवस्था में ऊँची जाति के लोगों को शारीरिक श्रम कम करना पड़ता है और नीची जातियों को अधिक श्रम करना पड़ता है। शारीरिक श्रम में भेद है। जो शारीरिक श्रम अधिक बुरा है, वह सबसे नीची जाति को करना पड़ता है। जैसे चमार, भंगी आदि का काम गन्दा होता है, इसलिए उन्हें सबसे नीचा समझा जाता है। ब्राह्मण केवल बौद्धिक काम करते हैं और उनके काम में शारीरिक श्रम नगण्य होता है। गाँधी जी इस व्यवस्था को अनुचित मानते हैं। वह कहते हैं, ''जहां तक मैंने गीता को समझा है, मुझे लगता है कि गीता में यज्ञ के कई अर्थ किए गये हैं। उनमें शरीर–श्रम भी आ जाता है। समाज की भलाई या लोक संग्रह के लिए यज्ञ के तौर पर शरीर से मेहनत करना भी सब वर्णों का धर्म है। इस यज्ञ से कोई नहीं बच सकता है; क्योंकि मेहनत के बिना शरीर का निभाव भी नहीं हो सकता है। जो यह श्रम रूपी यज्ञ नहीं करता है वह चोरी करता है। यह कहना कि मेहनत शूद्र का ही काम है, धर्म को न जानना है।'' गाँधी जी का आदर्श यह है कि किसी व्यक्ति को शारीरिक श्रम किये बिना खाने का अधिकार नहीं है। इसके अतिरिक्त शारीरिक श्रम में अच्छे बुरे का चुनाव नहीं करना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति को सभी प्रकार के श्रम थोड़े–थोड़े अवश्य करने चाहिए, जैसे–खेल, कताई, बुनाई, सुनारी, लोहारी आदि। उनके अनुसार भंगी का कार्य तो प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं करना चाहिए।

1. गाँधी जी, यंग इण्डिया, पृ0 633

वास्तव में, गाँधी जी के उक्त सुझाव का मूल आशय समाज की मनोवैज्ञानिक चिकित्सा करना है तथा व्यक्तियों के मस्तिष्क से इस भावना को दूर करना है कि शारीरिक श्रम हीन या घृणित कार्य है। चूँकि शारीरिक श्रम के प्रति हीन दृष्टिकोण सदियों से जड़ जमा चुका है, इसलिए इस भाव का उन्मूलन गाँधी जी के उक्त व्यावहारिक कार्यक्रम से ही हो सकता है। जब सब वर्ण या जातियां छोटे–बड़े शारीरिक श्रम को करेंगी तो उनके मन में किसी भी कोटि के काम के प्रति घृणा का भाव नहीं रहेगा। गाँधी जी ने स्वयं यह कार्य प्रारम्भ किया था। दक्षिणी अफ्रीका से ही भंगी का काम करने लगे थे। भारत में, उनके आश्रमों में उनके अनुयायी सब प्रकार के शारीरिक श्रम करते थे।

शारीरिक श्रम के ऊँच–नीच के भेद के आधार पर ही अस्पृश्य या अछूत जातियों का जन्म हुआ और उनको अनेक सामाजिक–धार्मिक सुविधाओं से वंचित किया गया था। यह स्थिति भयंकर अमानवीय स्थिति को पहुँच गई थी और किसी सीमा तक आज भी है। ऐसा माना जाता था कि अस्पृश्यों की छाया मात्र से सवर्ण लोग अपवित्र हो जाते हैं।[1] दक्षिण भारत में उल्लायन जाति यदि एक हाथ के भीतर आ जाए, तो शूद्र भी दूषित हो जाता है। नायदि जाति का आदमी दो सौ हाथ की दूरी पर आ जाए, तो सभी अपवित्र हो जाते हैं। इस अपवित्रता से बचने के लिए कुछ स्थानों में अस्पृश्यों पर प्रतिबन्ध लगाए गये थे। अस्पृश्यों को सार्वजनिक कुओं में पानी लेने की अनुमति नहीं थी। वे नाइओं से बाल नहीं बनवा सकते थे और धोबियों से कपड़े नहीं धुलवा सकते थे। उनके बच्चों को विद्यालयों में पढ़ने की अनुमति नहीं थी।

धार्मिक क्षेत्र में, अस्पृश्यों को मन्दिरों में प्रवेश नहीं मिलता था।[2] वे पवित्र धार्मिक ग्रन्थ नहीं पढ़ सकते थे तथा वैदिक रीति से अपने विवाह नहीं करा सकते थे।

अस्पृश्यों को इतना घृणित समझा जाता था कि इनकी बस्ती प्रायः गाँव के बाहर रखी जाती थी। वहाँ इनको सवर्णों की तरह पक्के मकान बनाकर रहने की छूट नहीं थी।[3] मालाबार में कुछ जाति के लोगों को छाता लेने, जूता पहिनने, गहने धारण करने तथा देश की सामान्य भाषा तक के प्रयोग करने की अनुमति नहीं थी। एक समय में महाराष्ट्र में,

---

1. गाँधी, भाषण, नई दिल्ली, 8 जनवरी, 1948।
2. गाँधी भाषण, पूना, मार्च, 1746
3. गाँधी, भाषण, गोधरा, नवम्बर, 1917

महर जति के लोग सड़क पर थूक नहीं सकते थे। अतः थूकने के लिए गले में मिट्‌टी का बर्तन लटकाये रहना पड़ता था। इसी प्रकार गुजरात में दलित वर्ग के लोगों को गले में सींग पहने रहना पड़ता था, जिससे उनको दूर से जाना जा सके।[1] भूल से कोई भंगी (रेल के) डिब्बे में सवार हो जाता तो बेचारा पिटे बिना नहीं रह सकता और गालियों की तो मानो उस पर वर्षा ही होने लगेगी। उसके हाथ चाय वाला चाय और दूकानदार सौदा नहीं बेचता। वह मरता हो तो भी (सवर्ण) उसको छूना गवारा नहीं करते। सवर्ण उसे अपना जूठा खाना देते हैं तथा फटे और मैले कपड़े पहनने को।[2] कहीं–कहीं तो वर्णों को देखकर हरिजनों को पेट के बल पर रेंगना पड़ता था तथा नाक जमीन पर रगड़नी पड़ती थी।[3]

मेरा विश्वास है कि जाति–व्यवस्था के इस अस्पृश्यता पक्ष का जितना सूक्ष्म, तटस्थ और विस्तृत अध्ययन गाँधी जी ने किया था, उतना भारत के किसी विद्वान ने नहीं किया। उन्होंने इसके विभिन्न रूपों पर विचार करके यह निष्कर्ष निकाला था कि यह एक भयंकर सामाजिक दोष है। इसलिए वह आजीवन इस पर खुलकर प्रहार करते रहे। उन्होंने अपने लेखों और भाषणों में इसके लिए कठोर–से–कठोर शब्दों का प्रयोग किया : ''यह वर्तमान हिन्दू–धर्म के माथे पर अमिट कलंक का टीका है। मेरे जानते यह एक अभिशाप है और जब तक यह अभिशाप हमारे साथ लगा रहेगा, तब तक हमें सोचना चाहिए कि इस पवित्र भूमि पर जो कुछ भी विपत्ति आती है, वह इस घोर पाप के दण्ड–स्वरूप ही है। अस्पृश्यता जिस रूप में आज हिन्दू–धर्म में प्रचलित है, वह भगवान और मनुष्य दोनों के विरुद्ध पाप है। यह एक विष की तरह है जो हिन्दू–धर्म के मर्म को खाए जा रहा है। रावण राक्षस था, पर यह अस्पृश्यता रूपी राक्षसी तो रावण से भी भयंकर है। और इस राक्षसी की धर्म के नाम पर जब हम पूजा करते हैं, तो हमारे पाप का भार और भी बढ़ जाता है। इससे हब्शियों की गुलामी भी कहीं अच्छी है। अछूत–प्रथा अनेक सिरवाली पिशाचिनी हैं, इसलिए आवश्यक है कि जब–जब पिशाचिनी सिर उठाए, उसका सामना किया जाए। सहस्रमुख वाले राक्षस की तरह यह प्रथा अपनी जहरीली जीभ से समाज को डस रही है।'' गाधी जी इसे सवर्णों का अक्षम्य अपराध मानते हैं : ''हम अपने भाइयों को दबाने के दोषी हैं। हम उन्हें (अस्पृश्यों को) पेट के बल रेंगाते हैं। हम उनकी नाक जमीन

1. शम्भूरत्न त्रिपाठी, भारतीय समाज और संस्कृति, पृ0 136
2. गाँधी, भाषण, गोधरा, नवम्बर, 1917
3. गाँधी, भाषण, 31 मार्च, 1946

पर घिसवाते हैं। गुस्से से लाल आँखें करके हम उन्हें रेल के डिब्बे के बाहर ढकेल देते हैं। ब्रिटिश शासनकाल ने इससे ज्यादा क्या किया है? जो अपराध हम डायर, ओ डायर के सिर मढ़ते हैं, उनमें से कौन अपराध हमारे सिर नहीं मढ़ा जा सकता?''[1] गाँधी जी ने अस्पृश्यता के प्रश्न को राजनैतिक दृष्टिकोण से नहीं उठाया था, अपितु वह इस पर सामाजिक न्याय तथा नैतिकता के आधार पर विचार कर रहे थे। उन्होंने उन समस्त तर्कों पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया, जो इस प्रथा के समर्थन में प्रस्तुत किए जाते हैं। उन्होंने हिन्दू धर्म–शास्त्रों का सूक्ष्म अनुशीलन किया, शास्त्रों के अनेक पण्डितों और आचार्यों से विचार विमर्श किया तो इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि मूल हिन्दू धर्मशास्त्र इस अमानवीय प्रथा का समर्थन नहीं करते हैं। जिन धर्म ग्रंथों से इस प्रथा का समर्थन होता था, उनको गाँधी जी ने मानने से इन्कार किया। उन्होंने लिखा, ''मैं गीता में भगवान कृष्ण द्वारा सिखलाए गए समानता के सिद्धान्त में विश्वास करता हूँ। हमें गीता की सीख है कि चारों जातियों, वर्णों के लोगों को समान भाव से देखना चाहिए।''

अस्पृश्यता के समर्थकों का दावा है कि अछूत आर्य जाति से बहिष्कृत लोग हैं। गाँधी जी का तर्क है कि यदि आर्यों ने कुछ लोगों को पिछड़ा हुआ समझकर या अप्रगतिशील मानकर जाति से बहिष्कृत कर दिया था, तो कोई उचित कार्य नहीं किया था। लेकिन हजारों वर्षों बाद आज भी सवर्णों द्वारा बिना किसी उचित कारण के उन लोगों की संतानों को बहिष्कृत रखना न्याय संगत नहीं है, जब कि अछूत समाज की सबसे अधिक सेवा करते है और सवर्णों का सबसे अधिक हित करते हैं।

अस्पृश्यता के समर्थकों का सबसे बड़ा तर्क यह है कि अछूत पशु–हत्या करते हैं, मांस का व्यापार करते हैं और मल–मूत्र छूते हैं, इसलिए वे अस्पृश्य हैं। गाँधी जी इस तर्क का खण्डन करते हुए कहते हैं कि डाक्टर और नर्स रोगियों का मल–मूत्र स्पर्श करते हैं, लेकिन वे समाज में अछूत नहीं हैं और अनेक सवर्ण हिन्दू भोजन या यज्ञ के लिए पशु हत्या भी करते हैं; किन्तु उनको अस्पृश्य नहीं माना जाता है।

अधिकांश लोगों में अछूतों का दर्शन और स्पर्श अवित्रता की भावना का संचार करता है। गाँधी जी का तर्क है कि ''वेद, शास्त्र, पुराण, संसार के अन्य सभी धर्मों के

---

1. क्षेमचन्द्र 'सुमन' द्वारा संकलित 'बापू और हरिजन' नामक पुस्तक के गाधी जी के विभिन्न लेखों से उद्धृत।

समान स्पष्ट रूप से यह घोषित करते हैं कि मन की शुद्धि ही मुख्य विषय है। जितना मन का मन पर प्रभाव पड़ता है, उतना शरीर का शरीर पर नहीं। यदि केवल बाहरी शुद्धि की क्रिया की जाए तो उससे आत्मा का हनन होता है। बाहरी शुद्धि की क्रियाओं का परिणाम यह होता है कि आदमी अपने को दूसरों से बड़ा समझने लगता है, दूसरों के साथ पशु का सा व्यवहार करता है, और इस प्रकार उसकी आत्मा का हनन होता है। यह छुआ–छूत का भूत आत्मा के विकास के लिए हानिकारक सिद्ध हो चुका है। यह नियम हिन्दू धर्म के श्रेष्ठतम तथा उदार सिद्धान्तों के विपरीत है।''

संक्षेप में, गाँधी जी ने जाति–व्यवस्था के अस्पृश्यता पक्ष पर, सत्य और अहिंसा के सिद्धान्त पर आधारित शुद्ध सामाजिक न्याय की दृष्टि से विचार किया और इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि अस्पृश्यताजन्य सामाजिक–धार्मिक निर्योग्यताएँ तथा अनेक प्रकार की सामाजिक विषमताएं अनुचित और दोषपूर्ण हैं। समाज की प्रगति और व्यवस्था के लिए इनका निवारण अपरिहार्य और अनिवार्य है। उन्होंने जाति के इस दोष को दूर करने के लिए अपनी सम्पूर्ण शक्ति से देशव्यापी आन्दोलन किया, अनेक रचनात्मक कार्यक्रम प्रारम्भ किये। फलतः अस्पृश्यों की स्थिति में असाधारण परिवर्तन हुआ, उनका सामाजिक स्तर उन्नत हुआ और भावी प्रगति का मार्ग प्रशस्त हुआ।

जाति व्यवस्था का आठवाँ लक्षण यह अनुभव किया जाता है कि इसकी स्तरण व्यवस्था में अधिकांशतः ऊँची जातियों की अपेक्षा नीची जातियों की आर्थिक स्थिति बहुत हीन रहती है। नीची जातियों की आय कम होती है और उनकी सांस्कृतिक उपलब्धियां भी निम्न कोटि की हैं। प्रायः उनके पेशे ऐसे होते हैं, जिनमें उनको समुचित आय नहीं हो पाती है। उनको प्रायः ऊँची जातियों के दान और दया पर निर्भर रहना पड़ता है।

गाँधी जी जाति–व्यवस्था की इस स्थिति से भी असन्तुष्ट हैं। उनके आदर्श के अनुसार समाज के समस्त व्यवसाय प्रतिष्ठा और मूल्य की दृष्टि से समान होने चाहिए। मंत्री, वकील, डाक्टर, व्यापारी, चमार, बढ़ई, भंगी, ब्राह्मण समान धन अर्जित कर सकें। जीवन की सामान्य सुख–सुविधाएं समस्त जातियों के लोगों को समान रूप से प्राप्त होनी चाहिए। यह सम्भव है कि बुद्धि और शारीरिक क्षमता की विषमता के कारण समाज के कुछ

लोग अधिक धन अर्जित कर सकें, तो उनको चाहिए कि वे अपने अतिरिक्त धन को समाज की सेवा में लगाएं।

प्राचीन वर्ण सिद्धान्त से भिन्न, जाति–व्यवस्था के अन्तर्गत असंख्य जातियाँ उत्पन्न हो गई हैं। समाजशास्त्रियों का अनुमान है कि भारत में लगभग छह हजार जातियाँ पृथक्–पृथक् सीमाएँ बनाए हुए हैं। गाँधी जी जाति के इस स्वरूप से भी असहमत हैं। उनका मत है, ''वर्ण हैं और चार ही हैं, लेकिन जातियाँ बेशुमार हैं और उनमें भी दल बन गये हैं, जिनमें रोटी–बेटी व्यवहार बन्द होता जा रहा है। यह उन्नति नहीं, अवनति की निशानी है।''[1] ''जब हिन्दू जड़ता के शिकार हो गए; तब वर्ण के दुरुपयोग के फलस्वरूप बेशुमार जातियाँ बन गईं और रोटी–बेटी के व्यवहार के अनावश्यक बन्धन पैदा हुए।''

4. निष्कर्ष

जाति–व्यवस्था के वर्तमान समस्त पक्षों पर गाँधी जी के परिप्रेक्ष्य के सन्दर्भ में विचार करने से निष्कर्ष निकलता है कि वह इस व्यवस्था के प्रचलित स्वरूप से पूर्णतः असहमत हैं। उन्हें ऊँच–नीच का भेद; रोटी–बेटी व्यवहार के प्रतिबन्ध; आर्थिक, सामाजिक तथा धार्मिक विषमता; अस्पृश्यता; जातियों की बहुलता आदि किसी भी दशा में स्वीकार नहीं है। वह इन समस्त बातों को सामाजिक विघटन का लक्षण मानते हैं तथा इन्हें राष्ट्रीय एकता, आर्थिक उन्नति, सामाजिक प्रगति और आध्यात्मिक विकास के लिए बाधक समझते हैं। उनका दृढ़ विश्वास है कि हिन्दुओं का प्राचीन वर्ण–धर्म का सिद्धान्त सर्वथा वैज्ञानिक और कल्याणप्रद है, लेकिन जाति–व्यवस्था ने वर्ण–सिद्धान्त को अत्यन्त विकृत रूप में प्रस्तुत कर दिया है; यह उस मूल सिद्धान्त से बहुत दूर हट चुकी है। अतः वर्तमान परिस्थितियों में जाति–प्रथा के इस विकृत रूप को नष्ट करके, उसके स्थान पर, शुद्ध वर्ण–व्यवस्था की प्रतिष्ठा होनी चाहिए; क्योंकि वर्ण–विभाजन तो किसी–न–किसी रूप में संसार के प्रत्येक समाज को स्वीकार करना ही पड़ता है। गाँधी जी का दृढ़ विश्वास है कि वर्ण–धर्म हिन्दुओं की उच्च कोटि की खोज है, जिसे एक–न–एक दिन सारे संसार को स्वीकार करना चाहिए।

1. गाँधी, नवजीवन, 3.5.25

3

गाँधी : वर्ग और समाज

1. प्रारम्भिक

वर्ग व्यवस्था (Class System) भी सामाजिक स्तरण का एक रूप है। स्तरण का यह रूप विश्व के अधिकांश उन्नत समाजों में देखने को मिलता है। आधुनिक युग के आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक चिन्तकों ने इस पर बहुत गम्भीरतापूर्वक विचार किया है, जिससे अनेक मत–मतान्तर सामने आये हैं। सामाजिक विचारक के रूप में गाँधी जी को भी समाज के इस महत्वपूर्ण तथ्य–वर्ग–पर विचार करना पड़ा तथा अपना मत स्थिर करना पड़ा। प्रस्तुत अध्याय में, उनके इसी मत का विश्लेषण किया जा रहा है।

2. वर्ग की अवधारणा

गाँधी जी के वर्ग सम्बन्धी परिप्रेक्ष्य पर विचार करने के पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि वैज्ञानिक क्षेत्र में वर्ग का क्या आशय होता है?

जब हम उक्त प्रश्न के उत्तर के लिए समाज–वैज्ञानिकों की ओर देखते हैं, तो अनुभव होता है कि भिन्न–भिन्न समाजशास्त्री वर्ग की पृथक्–पृथक् रीति से परिभाषाएँ करते हैं, जिनमें शब्दों का अन्तर अवश्य है, लेकिन न्यूनाधिक रूप में उनके आशय में कोई विशेष भेद नहीं है। आर0टी0 लापियरे के अनुसार, ''वर्ग सांस्कृतिक रूप से पारिभाषित एक समूह है, जिसे सम्पूर्ण जनसंख्या के अन्तर्गत एक विशेष स्थान या स्तर प्राप्त होता है।''[1] आर0एम0 मैकाइवर ने कहा है, ''सामाजिक वर्ग समाज का ऐसा भाग है, जो सामाजिक स्तर के आधार पर शेष समाज से पृथक् किया जा सकता है।''[2] मार्टिण्डेल और मोनाचेसी ने अधिक स्पष्ट व्याख्या करते हुए लिखा है, ''वर्ग से हमारा अर्थ मनुष्यों के उन समूहों से है, जो समाज में प्राप्त वस्तुओं और सुविधाओं के एक विशेष अंश का नियन्त्रण करते हैं।''[3] जिन्सबर्ग ने और अधिक स्पष्ट शब्दों में व्याख्या की है, ''सामाजिक वर्गों को मनुष्यों के एक अंश या व्यक्तियों के समुच्चय के रूप में वर्णित किया जा सकता है, जिसमें अपने वर्ग में

---

1. आर.टी. लापियरे, सोसियोलाजी, पृ. 452
2. आर.एम. मैकाइवर, सोसाइटी, पृ. 348
3. मर्टिण्डेल और मोनाचेसी, एलीमेण्ट्स आफ सोसियोलाजी, पृ. 531

समस्त व्यक्ति परस्पर समान होते हैं और शेष समाज के लोगों से हीनता या वरेण्यता के स्वीकृत मानदण्डों से पृथक् होते हैं।''[1]

इन समस्त विद्वानों ने वर्ग सम्बन्धी उक्त संक्षिप्त विचारों की विस्तृत व्याख्यायें भी प्रस्तुत की हैं, जिनके अनुशीलन से वर्ग की स्पष्ट अवधारणा के लिए निम्नांकित पाँच निष्कर्ष प्राप्त होते हैं।

वर्ग की प्रथम विशेषता यह होती है कि समाज में जितने वर्ग होते हैं, उनमें एक संस्तरण होता है अर्थात् एक समाज के विभिन्न वर्ग एक–दूसरे से अपने को ऊँचा या नीचा मानते हैं। उदाहरण के लिए मजदूर वर्ग, इंजीनियर वर्ग तथा मालिक वर्ग के लोग परस्पर समान नहीं माने जाते हैं। इन्जीनियर अपने को मजदूरों से ऊँचा मानता है और कारखाने के मालिक से अपने को नीचा समझता है। इस तरह वर्ग–व्यवस्था में ऊँच–नीच का भेदभाव निश्चित रूप से होता है। सामान्यतः शारीरिक श्रम करने वालों को नीचा समझा जाता है, और बौद्धिक श्रम वालों को ऊँचा समझा जाता है।

वर्ग–व्यवस्था की दूसरी विशेषता यह है कि इसके अन्तर्गत प्रत्येक वर्ग के सदस्यों को कुछ ऐसी निश्चित सुविधाएं प्राप्त होती हैं जो अन्य वर्गों के व्यक्तियों को नहीं प्राप्त होती हैं। उदाहरण के लिए एक मजदूर अधिक श्रम करता है, लेकिन कम वेतन पाता है और उसके विपरीत इंजीनियर कम श्रम करता है और मजदूर की अपेक्षा कई गुना अधिक वेतन पाता है। केवल वेतन का ही अन्तर नहीं होता है, अपितु जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में इंजीनियर मजदूर से अधिक सुख–सुविधाओं, मान–सम्मान का उपभोग करता है।

वर्ग–व्यवस्था की तीसरी विशेषता वर्ग–चेतना है। प्रत्येक वर्ग के लोगों में अपने वर्ग के प्रति एक आत्मीयता का भाव होता है। कभी–कभी वर्ग संघटित रूप में अपने सदस्यों के हितों की सुरक्षा भी करते हैं। वर्ग–चेतना एक मनोवैज्ञानिक तत्त्व है, जिसमें तीन प्रकार की भावनाओं का योग होता है। पहला भाव अपने वर्ग से अवगत होना है, अर्थात् विश्वास के साथ अपने वर्ग के लोगों के साथ समानता का व्यवहार करना है। दूसरा भाव हीन–भावना का है, जिसके कारण एक वर्ग के सदस्य, अपने से ऊँचे वर्ग के लोगों से अपने को छोटा समझते हैं। तीसरा भाव उच्च भावना का है, जिसके कारण एक वर्ग के सदस्य, अपने से

1. मारिस जिन्सबर्ग, सोसियोलाजी, पृ. 10

छोटे वर्ग के सदस्यों से, अपने को ऊँचा समझते हैं। वर्ग के सदस्यों की ये तीनों मानसिक दशाएँ बड़े जटिल रूप में कार्य करती हैं। वर्गों की समानता, हीनता और उच्चता की इन भावनाओं के कारण ही समाज के सदस्यों के सामाजिक सम्बन्ध बनते–बिगड़ते हैं। इन भावनाओं से ही समाज के कुछ वर्गों को कभी लाभ होता है और कभी हानि होती है।

वर्ग की चौथी विशेषता रहन–सहन का निश्चित स्तर है। प्रत्येक वर्ग के रहन–सहन के सम्बन्ध में न्यूनाधिक रूप में कुछ निश्चित नियम होते हैं। उदाहरण के लिए उच्च वर्ग के सदस्य के पास कार होनी चाहिए, उसे प्रथम श्रेणी में यात्रा करनी चाहिए तथा घर पर नौकर होने चाहिए। जो उच्च वर्ग के लोग इन मोटे–मोटे नियमों का पालन नहीं करते हैं, वे या तो वर्ग की सदस्यता से च्युत हो जाते हैं अथवा अपने को संकट में अनुभव करते हैं।

वर्ग की पाँचवी महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि वर्ग–व्यवस्था की सीमाएं बहुत कठोर नहीं होती हैं। कोई व्यक्ति एक वर्ग से दूसरे वर्ग में अपने प्रयत्न अथवा अच्छे–बुरे कार्यों से आ–जा सकता है। जैसे, एक उच्च वर्ग का व्यक्ति सट्टे में अपनी सब सम्पत्ति खोकर नीचे वर्ग में पहुँच सकता है, और एक निम्न वर्ग का सदस्य लाटरी में रुपया पाकर ऊँचे वर्ग में पहुँच सकता है।

वर्ग–व्यवस्था की छठी विशेषता आर्थिक स्थिति है। यह विशेषता कुछ विवादास्पद है। मार्क्स, मैक्सवेबर, जिन्सबर्ग आदि का मत है कि वर्ग का निर्धारण आर्थिक स्थिति से ही होता है। अच्छी आर्थिक स्थिति से लोग ऊँचे वर्ग में पहुँच जाते हैं और बुरी आर्थिक स्थिति से लोग नीचे वर्ग में रहते हैं। इस मत के खण्डन में बहुत कुछ कहा गया है, लेकिन आज की सामाजिक व्यवस्था में पूर्ण रूप से तो नहीं लेकिन बहुत अधिक सीमा तक अर्थ से ही वर्ग का निर्धारण होता है। इसमें सन्देह नहीं है कि आजकल पैसे से किसी सीमा तक यश, मान–सम्मान, पद–प्रतिष्ठा को प्राप्त किया जा सकता है।

3. वर्गीय संस्तरण समाज की व्याधिकीय अवस्था का सूचक

वर्गीय स्तरण की जो विशेषताएं ऊपर बतायी गई हैं, उनको गाँधी जी के सत्य और अहिंसा के सिद्धान्त की दृष्टि से देखते हैं तो वर्गीय स्तरण समाज की व्याधिकीय स्थिति अर्थात् अस्वस्थ स्थिति का सूचक प्रतीत होता है। वर्गीय आधार पर संघटित समाज की

रचना पिरामिड के रूप में होती है। सबसे छोटे वर्ग के लोग नीचे होते हैं और क्रमशः उन्हीं के ऊपर ऊँचे वर्ग स्थित होते हैं। सबसे ऊपर बहुत थोड़े से लोग होते हैं। गाँधी जी इस प्रकार की समाज रचना स्वीकार नहीं करते हैं; क्योंकि ऊपर के वर्गों के लोग नीचे के वर्गों की छाती पर बैठे होते हैं अर्थात् ऊपर के वर्ग के लोग नीचे के वर्गों का शोषण करते हैं; और शोषण को गाँधी जी निकृष्टतम हिंसा मानते हैं। उनका मत है कि ''सामाजिक जीवन एक मीनार की शक्ल में नहीं होगा, जहाँ ऊपर तंग चोटी को नीचे के चौड़े पाये पर खड़ा रहना पड़ता है। उसमें तो समुद्र की लहरों की तरह जीवन एक के बाद एक घेरे की शक्ल में होगा, और व्यक्ति इनका केन्द्र होगा।''[1]

वर्गीय स्तरण में उच्च वर्ग के लोग शारीरिक श्रम बहुत कम करते और सुख–सुविधाओं का अधिक उपभोग करते हैं तथा निम्न वर्ग के लोग शारीरिक श्रम अधिक करते हैं, लेकिन उन्हें जीवन में सुख–सुविधाएं न्यूनतम प्राप्त होती हैं। यहाँ दोनों क्षेत्रों में श्रम और उपभोग में विषमता है। गाँधी जी के अनुसार दोनों प्रकार की विषमता रोग–ग्रस्त या विघटित समाज का लक्षण है। उनका मत है कि शरीर–श्रम समाज के प्रत्येक व्यक्ति के लिए अनिवार्य होना चाहिए। बिना शरीर–श्रम के किसी को रोटी खाने का कोई अधिकार नहीं है। यदि सब अपने ही श्रम की रोटी खायें तो सबके लिए पर्याप्त भोजन और पर्याप्त अवकाश उपलब्ध हो जाएगा। तब न अत्यधिक आबादी की चिल्लाहट ही मचेगी, न कोई रोग फैलेगा और न जैसा हम आज चारों ओर देखते हैं, वैसी कोई विपत्ति सतावेगी।[2] सुख–सुविधाओं के उपभोग के सम्बन्ध में गाँधी जी मानवता के सिद्धान्त को मानते हैं। वह इसे सामाजिक अन्याय मानते हैं कि अधिकांश लोगों को भर पेट पौष्टिक भोजन न मिले, शरीर ढकने के ठीक कपड़े न मिलें, बच्चों की शिक्षा के लिए पर्याप्त धन न प्राप्त हो और दूसरी ओर समाज के कुछ लोग अपार सम्पत्ति संचित किए हुए विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत करें। ''जीवन की आवश्यक वस्तुएं आपको भी वैसे ही होनी चाहिए, जैसे राजाओं और धनियों को हैं। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि आपके भी उनके जैसे महल हों। सुख के लिए महल जरूर नहीं है। आप या मैं तो उनमें खो ही जाएंगे। परन्तु आपको जीवन की तमाम साधारण सुविधाएं मिलनी चाहिए, जो अमीरों को प्राप्त हैं।''[3] वह यह भी

1. गाँधी, अहिंसक समाजवाद की ओर, पृ0 5
2. गाँधी, अहिंसक समाजवाद की ओर, पृ0 17
3. गाँधी, यंग इण्डिया, 26.3.31

चाहते हैं कि "भंगियों, डाक्टरों, वकीलों, शिक्षकों, व्यापारियों और दूसरे लोगों को दिन भर के प्रामाणिक काम की एक सी मजदूरी मिलनी चाहिए।"[1] वर्गीय स्तरण में वर्ग–चेतना बहुत प्रबल होती है, जिसके कारण समाज में ऊँच–नीच का भेदभाव रहता है। फलतः समाज में सहयोग, सद्भावना और शान्ति नहीं रहती है। गाँधी जी ऊँच–नीच की भावना को अस्वीकार करते हैं। वह कहते हैं "मैं तो अद्वैत के बड़े भारी सिद्धान्त को मानने वाला हूँ, और अद्वैत का मेरा अर्थ ऊँच–नीच के फर्क को मंजूर करने से इन्कार करता है। हर इन्सान चाहे वह हिन्दुस्तान में पैदा हो या इंगलैण्ड या अमेरिका में, बराबरी के दर्जे पर पैदा होता है। मैं इस सिद्धान्त का कायल हूँ। इसलिए हम पर राज्य करने वाले अपने को हम से ऊँच की जो कोशिश करते हैं, उसके खिलाफ मैं लड़ रहा हूँ; दक्षिणी अफ्रीका में ऊँच–नीच के भेद के खिलाफ मैं पग–पग पर लड़ा हूँ, और इसी वजह से मैं अपने को भंगी, जुलाहा और मजदूर कहलाने में शान समझता हूँ। ब्राह्मण भी जब अपने ऊँचेपन का घमण्ड करते हैं, तो मैं उनसे भी लड़ता हूँ। मुझे तो यह नामर्दी की निशानी लगती है कि आदमी आदमी को अपने से नीचा समझे। जो सबसे अच्छा होने का दावा करते हैं, वे अपनी नालायकी साबित करते हैं।"[2]

इसका आशय यह है कि गाँधी जी वर्तमान सामाजिक स्तरण और उसकी आधारभूत विशेषताओं को सामाजिक संघटन और प्रगति की दृष्टि से अन्यायपूर्ण और अनुचित मानते हैं। वह ऐसी वर्ग–व्यवस्था नहीं चाहते हैं, जिसमें समाज के कुछ लोग अधिकांश लोगों का प्रत्यक्ष या परोक्ष शोषण करके अथवा उनको हीन अवस्था में रखकर स्वयं सुख–सुविधा का उपभोग करें। उनका आदर्श है कि समाज का कोई व्यक्ति ऐसी वस्तु या स्थिति का उपभोग न करे, जो समाज के अन्य सामान्य व्यक्तियों को उपलब्ध न हों। वर्ग–व्यवस्था के अन्तर्गत यही नियम भंग होता है।

4. वर्ग–विद्वेष

समाज में वर्ग अनेक प्रकार के हैं। समाज वैज्ञानिकों ने इनको भिन्न–भिन्न रूपों में वर्गीकृत किया है। मुख्य रूप से तीन प्रकार के वर्गीकरण प्रचलित हैं –

---

1. गाँधी, हरिजन, 16.3.47
2. गाँधी, नवजीवन, 25..27

1. कर्मठ और विलासीवर्ग

2. निम्न, मध्य और उच्च वर्ग

3. श्रमिक और पूंजीवादी वर्ग

इन वर्गीकरणों में विलासी वर्ग, उच्च वर्ग और पूंजीवादी वर्ग के व्यक्ति शरीर–श्रम नहीं करते हैं और कर्मठ या निम्न अथवा श्रमिक वर्ग के लोगों के द्वारा धनोपार्जन करके अधिकतम सुख उपभोग करते हैं। यदि श्रमिक या निम्न वर्ग के लोग इनके साथ न हों तो इनकी विलासिता चल नहीं सकती है। इसलिए उच्च वर्ग या पूंजीवादी वर्ग के लोग ऐसी स्थितियाँ उत्पन्न करते रहते हैं, जिससे निम्न वर्ग या श्रमिक वर्ग के लोग उनके पंजे से छूटने न। इसके लिए वे अनेक अनुचित और अनैतिक उपायों का अनुसरण करते हैं और अपनी स्थिति को बनाए रखने का प्रयत्न करते हैं। गाँधी जी इसे शोषण मानते हैं।

जहाँ शोषण होता है, दमन होता है, अन्याय और अत्याचार होता है, वहाँ शोषित में ईर्ष्या और द्वेष की भावना भी उत्पन्न होती है। निम्न वर्ग अपने से उच्च वर्ग के प्रति द्वेष की भावना रखते हैं; क्योंकि उनको कठोर श्रम करने पर भी वे सुख–सुविधाएं नहीं प्राप्त होती हैं, जो बिना श्रम के उच्च वर्ग को प्राप्त होती हैं। इसके अतिरिक्त उच्च वर्ग के लोग अपने से निम्न वर्ग के लोगों से घृणा करते हैं, उनको हीन समझते हैं। प्रतिक्रिया स्वरूप भी निम्न या श्रमिक वर्ग में पूंजीपति या उच्च वर्ग के प्रति द्वेष की भावना उत्पन्न होती है, कभी–कभी यह द्वेष की भावना सक्रिय संघर्ष का रूप धारण कर लेती है। यह द्वेष भाव और संघर्ष समाज को विघटन और विग्रह, अशान्ति और अव्यवस्था की ओर अग्रसर करता है, जो प्रत्यक्ष रूप से सामाजिकता की दृष्टि से अवांछनीय है।

गाँधी जी वर्गीय स्तरण से उत्पन्न विषमता को अन्यायपूर्ण और अवांछनीय मानते हैं और विषमता की प्रतिक्रिया में उत्पन्न ईर्ष्या–द्वेष–घृणा, अन्याय, दमन आदि को भी अनुचित मानते हैं; क्योंकि द्वेष और संघर्ष में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से मन, वचन या कर्म की हिंसा होती है और वह हिंसा को समाज–कल्याण की दृष्टि से किसी भी दशा में स्वीकार नहीं करते हैं।

5. वर्ग–विद्वेष और संघर्ष का निराकरण

जब वर्ग–विद्वेष और संघर्ष अवांछनीय है, तो इसको दूर करना भी आवश्यक है। इस सम्बन्ध में संसार के अनेक विचारकों का ध्यान गया, जिनमें मार्क्स का नाम अग्रगण्य है। मार्क्स ने लिखा है, ''अब तक के समाज का इतिहास वर्ग संघर्षों का इतिहास है। स्वतन्त्र मनुष्य और दास, अभिजात वर्ग और साधारण प्रजा, पेट्रिशियन और प्लेबियन, सामन्त और उसके कम्मी, शिल्प संघ के मालिक और मजदूर कारीगर, संक्षेप में पीड़क और पीड़ित सदा से एक–दूसरे के विरोध में लड़ते रहे हैं। ऐसी लड़ाई का अंत हर बार या तो समाज का सारा ढांचा बदलने में हुआ है या लड़ने वाले दोनों वर्गों की बर्बादी में हुआ है।''

''इतिहास के शुरू के युगों में समाज प्रायः सभी जगह जटिल रूप से भिन्न–भिन्न स्तरों में बँटा दिखायी देता है। उसमें ऊँच–नीच के बहुत से सामाजिक दर्जे पाए जाते हैं। प्राचीन रोम में पेट्रिशियन, सामन्त, प्लेबियन और दास मिलते हैं। मध्य युग में सामन्ती राजे, उनके अधीन छोटे–छोटे सरदार, शिल्प–संघ के मालिक, मजदूर, कारीगर, काम सीखने वाले उम्मीदवार, अर्ध दास दिखायी पड़ते हैं। लगभग इन सभी वर्गों में भी कितनी ही छोटी–मोटी श्रेणियाँ होती थीं।''

''आधुनिक पूंजीवादी समाज सामन्ती समाज के ध्वंस से पैदा हुआ है। उसने समाज के वर्ग विरोधों को खतम नहीं किया है। उसने वर्गों के स्थान पर नए वर्ग, पीड़न के पुराने तरीकों के बदले नए तरीके, और संघर्ष के पुराने स्वरूपों की जगह नए स्वरूप खड़े कर दिए हैं।''

''किन्तु दूसरे युगों की तुलना में हमारे युग की पूंजीवादी युग की विशेषता यह है कि वर्ग विरोधों को इसने सीधा–सादा बना दिया है। आज पूरा समाज दिनों दिन दो विशाल प्रतिस्पर्धी शिविरों में, एक–दूसरे के खिलाफ खड़े दो विशाल वर्गों में : पूंजीपतियों और मजदूरों में बंटता जा रहा है।''[1]

मार्क्स के अनुसार इस वर्ग–संघर्ष को दूर करने का एक ही उपाय है वर्गों और उपवर्गों को समाप्त कर दिया जाए और केवल एक ही वर्ग की स्थापना की जाए। इसके

1. मार्क्स और एंजेल्स, कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणा–पत्र

लिए बहुसंख्यक शोषित वर्ग को संघटित किया जाए, उसमें शोषक वर्ग के प्रति तीव्र घृणा उत्पन्न की जाए तथा उसे सशस्त्र हिंसा या शान्तिपूर्ण उपाय से शोषक वर्ग को समाप्त करने के लिए कटिबद्ध कर दिया जाए। यदि शोषक वर्ग को समाप्त करने में रक्तपात हो तो किसी प्रकार हिचकने की बात नहीं है। यदि शोषित या सर्वहारा वर्ग पूर्ण संघटित होकर क्रान्ति करता है तो उसकी विजय निश्चित है। इस विजय के पश्चात् सर्वहारा वर्ग द्वारा समाजवादी व्यवस्था स्थापित होती है। इसमें मानव द्वारा शोषण समाप्त हो जाता है। वर्गहीन समाज की स्थापना होती है। संक्षेप में, मार्क्स वर्ग–संघर्ष दूर करने का यही उपाय बताते हैं।

गाँधी जी मार्क्स की तरह यह अनुभव करते हैं कि संसार में आर्थिक विषमता है। अल्पसंख्यक लोगों ने उत्पादन के साधनों पर अधिकार कर रखा है और बहुत अधिक सम्पत्ति संचित कर ली है, जिसके कारण ही बहुसंख्यक लोग भुखमरी और गरीबी की स्थिति में जीवनयापन कर रहे हैं, जो सामाजिक न्याय की दृष्टि से अनुचित है। यहाँ तक गाँधी जी और मार्क्स में समानता है। आगे मार्क्स कहते हैं कि इस स्थिति के लिए केवल पूंजीपति और जमींदार ही दोषी हैं, लेकिन गाँधी जी कहते हैं कि यह पूर्ण सत्य नहीं है; क्योंकि कोई शोषण बिना शोषित लोगों के सहयोग के सम्भव नहीं, इसलिए किसी सीमा तक शोषित भी दोषी हैं।[1]

मार्क्स आज के समाज में पूंजीपति और श्रमिक में वर्ग–संघर्ष अनुभव करते हैं; गाँधी जी इस बात से सहमत हैं।[2] मार्क्स वर्ग संघर्ष को सामाजिक प्रगति के लिए बाधक समझते हैं; गाँधी जी का भी यही मत है। दोनों वर्ग–संघर्ष को समाप्त करना चाहते हैं।

मार्क्सवादी वर्ग–संघर्ष दूर करने के लिए एक वर्ग को अर्थात् शोषक वर्ग को शक्ति और हिंसा के द्वारा समाप्त करने का उपाय प्रस्तुत करते हैं। वह शोषक वर्ग के प्रति घृणा उत्तेजना फैलाने, पूंजीपतियों की हत्या करने में संकोच नहीं करते हैं। गाँधी जी इस साधन का विरोध करते हैं। उनका विश्वास है कि व्यक्ति बुरा नहीं है, प्रणाली और प्रवृत्तियाँ बुरी हैं। जब तक समाज की प्रणाली और व्यक्ति की प्रवृत्तियों का परिष्कार नहीं होगा, तब तक लक्ष्य की पूर्ति नहीं होगी। यदि मनुष्य की प्रवृत्तियों में सुधार नहीं होता है तो एक बार

1. गाँधी, सर्वोदय, पृ0 109
2. गाँधी, अहिंसक समाजवाद की ओर, पृ0 183

कुछ समय के लिए कुछ व्यक्तियों का अन्त करने से वर्ग भेद समाप्त हो जाएगा, लेकिन पुनः वह जड़ें जमा लेगा।

मार्क्स का मत है कि केवल बाह्य परिस्थितियों से ही विचारों और प्रवृत्तियों का निर्माण होता है। यदि एक बार बाह्य परिस्थितियाँ ठीक हो जाएं, तो सब सुधार हो जाएगा। गाँधी जी कहते हैं कि मैं यह नहीं स्वीकार करता कि हमारे आदर्श, नैतिक मानदण्ड, मूल्य केवल बाह्य परिस्थितियों (भौतिक परिवेश) से ही उत्पन्न होते हैं, अपितु इसके विपरीत मैं यह मानता हूँ कि जैसे हम होते हैं, वैसा हमारा परिवेश हो जाता है।[1] चूंकि शोषित वर्ग की प्रवृत्तियां ठीक नहीं हैं, इसीलिए वर्ग–संघर्ष है।[2] यदि शोषित वर्ग, जो शोषकों की संख्या से करोड़ों गुना बड़ा है, अपनी स्थिति को सुधारने के लिए स्वयं हृदय से सचेष्ट हो जाए और अपना स्वयं सुधार कर ले, तो शोषक उनका सामना कैसे कर सकेंगे? लेकिन मजदूर, किसान, हरिजन आदि स्वयं अज्ञानी हैं, अपनी शक्ति नहीं जानते हैं, अपनी क्षुद्र स्थार्थ वृत्ति को नहीं त्यागते हैं, संयम और संगठन नहीं रखते हैं, इसलिए कष्ट में हैं। यदि करोड़ों निम्न वर्ग के लोगों में संयम और त्याग की भावना का विकास हो जाए तो वर्ग–संघर्ष नहीं रहे, स्थायी शान्ति स्थापित हो जाए तथा किसी हिंसा की आवश्यकता भी न पड़े।

मार्क्सवादी यह विश्वास करते हैं कि पूंजीपतियों के हृदय में परिवर्तन नहीं हो सकता है। उन्हें हिंसा या शक्ति के भय से उन्मूलन करना होगा। गाँधी जी का विश्वास है कि सत्य और अहिंसा द्वारा पूंजीपतियों के हृदय में परिवर्तन किया जा सकता और उनकी शोषण–वृत्ति का परित्याग कराया जा सकता है। यहाँ पर यह स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि क्या पूंजीपति अपनी सम्पत्ति का स्वेच्छा से परित्याग कर देंगे और क्या उनकी सम्पत्ति गरीबों में बाँट दी जाएगी ? मार्क्सवादी कहते हैं कि समस्त उत्पादन के केन्द्रों पर जनता का अधिकार हो जाएगा और अन्ततः राज्य के नियन्त्रण में जनता में समान रूप से सुख–सुविधाओं का वितरण होगा। गाँधी जी कहते हैं कि पूंजीपतियों से सम्पत्ति छीनी नहीं जाएगी अपितु उनकी सम्पत्ति का उन्हें ही ट्रस्टी बनाया जाएगा। वे अपनी सम्पत्ति से अपनी आवश्यकता से अधिक नहीं लेंगे, शेष सम्पत्ति समाज के हित में, जनता की सेवा में लगाएंगे। इस प्रकार पूंजीपति सम्पत्ति के स्वामी नहीं, संरक्षक हो जाएंगे।

---

1. प्यारेलाल, महात्मा गाँधी : लास्ट फेज, पृ0 137।
2. गाँधी, सर्वोदय, पृ0 110।

गाँधी जी के हृदय परिरवर्तन के सिद्धान्त के सम्बन्ध में मार्क्सवादियों का कहना है कि यह सिद्धान्त समूह या समाज के लिए व्यावहारिक नहीं है। इसे पूरे समाज पर कभी लागू नहीं किया जा सकता है; क्योंकि इतिहास में ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिलता है, जब पूरे समाज का इस प्रकार हृदय–परिवर्तन हुआ हो। गाँधी जी इस शंका का समाधान करते हुए कहते हैं, ''निस्सन्देह ऐसे परिवर्तन व्यक्तियों में तो हुए ही हैं। शायद सारे समाज में ऐसे परिवर्तन होने का उदाहरण न दिया जा सके। परन्तु इसका अर्थ इतना ही है कि अब तक बड़े पैमाने पर अहिंसा का कभी प्रयोग नहीं हुआ है। किसी–न–किसी प्रकार हम लोग इस गलत विश्वास में फँस गये हैं कि अहिंसा मुख्यतः व्यक्तियों का हथियार है और इसलिए उसका प्रयोग व्यक्ति तक ही सीमित रहना चाहिए। असल में यह बात नहीं है। अहिंसा निश्चित रूप में समाज का गुण है। इस सच्चाई का लोगों को पक्का विश्वास कराने के लिए मेरा प्रयत्न और प्रयोग दोनों चल रहे हैं। आश्चर्यों के इस युग में कोई यह नहीं कहेगा कि नयी होने के कारण ही कोई वस्तु या कल्पना निकम्मी है। यह कहना भी कि कठिन होने के कारण वह असम्भव है, इस युग की भावना के अनुसार नहीं है। जिन चीजों का सपने में भी ख्याल नहीं था, वे रोज देखी जा रही हैं, असम्भव सदा सम्भव बनता जा रहा है। हिंसा के क्षेत्र में इन दिनों होने वाले विस्मयकारी आविष्कार हमें सतत् आश्चर्य–चकित कर रहे हैं। परन्तु मैं मानता हूँ कि अहिंसा के क्षेत्र में इनसे कहीं ज्यादा अकल्पित और असम्भव दिखाई देने वाले आविष्कार होंगे। यदि प्रयत्न करने पर भी धनवान लोग सच्चे अर्थ में गरीबों के संरक्षक न बनें और गरीब दिन–दिन अधिक कुचले जाए और भूख से मरें, तब क्या किया जाए ?''

''इस पहेली का हल ढूंढ़ने के प्रयत्न में मुझे अहिंसक असहयोग और सविनय अवज्ञा का सही और अचूक साधन सूझा है, अमीर लोग समाज के गरीबों के सहयोग के बिना धन संग्रह नहीं कर सकते। मनुष्य का प्रारम्भ से ही हिंसा से परिचय रहा है; क्योंकि उसे यह बल अपने पशु–स्वभाव से उत्तराधिकार में मिला है। अहिंसा की शक्ति का ज्ञान तो उसकी आत्मा को तभी हुआ, जब वह चौपाये की स्थिति से ऊँचा उठ कर दोपाये (मनुष्य) की हालत में पहुँचा। इस ज्ञान का विकास उसके भीतर धीरे–धीरे, किन्तु निश्चित रूप में हुआ है। यदि यह ज्ञान गरीबों के भीतर प्रवेश करके फैल जाए, तो वे बलवान हो जायेंगे और

अहिंसा के द्वारा अपने को कुचल डालने वाली असमानताओं से मुक्त करना सीख लेंगे, जिनके कारण वे भुखमरी के किनारे पहुँच गये हैं।''[1]

मार्क्स का अन्तिम लक्ष्य वर्ग–विहीन समाज की स्थापना है। गाँधी जी को वर्ग–विहीन समाज का आदर्श अच्छा अवश्य लगता है, लेकिन उन्हें यह व्यावहारिक नहीं प्रतीत होता है। इसलिए वह वर्ग तो चाहते हैं, लेकिन वर्ग–भेद, वर्ग–द्वेष और वर्ग–संघर्ष नहीं चाहते हैं।

श्री मशरूवाला ने भी लिखा है, ''जहाँ तक मेरा ख्याल है, गाँधी जी ने कभी वर्ग–विग्रह की बात नहीं निकाली और न कभी यह कहा कि वर्ग–विहीन समाज कायम करना हमारा आदर्श है। खान–पान और विवाह तथा समाज में मिलने–जुलने में अड़चनें पैदा करने वाली जात–पात, वर्ण और जाति में माने हुए ऊँच–नीच के भेद तथा विविध व्यवसायों या एक ही उद्योग अथवा संस्था में भिन्न–भिन्न प्रकार के काम करने वालों की आजीविका और आमदनियों में रहे फर्कों का नाश करने की बात वे अवश्य करते रहे। लेकिन बिलकुल आदि अवस्था में रहे हुए समाज की बात छोड़ दें तो साधारण मानव समाज में तरह–तरह के काम करने के लिए भिन्न–भिन्न वर्गों की हस्ती सामाजिक जीवन का अनिवार्य अंग है।''[2]

सम्भवतः गाँधी जी का विश्वास है कि सामाजिक व्यवस्था को सुचारु रूप से संचालित करने के लिए श्रम–विभाजन को किसी–न–किसी रूप में स्वीकार करना ही होगा, जिससे किसी–न–किसी रूप में वर्गों का अस्तित्व बना ही रहेगा। अतः इस विवशता का सामना करने के लिए वर्गों के पारस्परिक सम्बन्धों में सामंजस्य और संतुलन किया जाए। इसके लिए वह वर्ण–सिद्धांत पर आधारित सामाजिक संरचना का समर्थन करते हैं, जिसमें समाज में स्थायी वर्ग होंगे, लेकिन उनमें ऊँच–नीच का भेद–भाव नहीं होगा, स्वार्थों का संघर्ष नहीं होगा और व्यवसायों में घातक प्रतिद्वन्द्विता नहीं होगी।

इस प्रसंग में यह स्पष्ट कर देना भी उचित है कि मार्क्स ने वर्गों के अध्ययन में मुख्यतः आर्थिक या व्यावसायिक आधार पर बने वर्गों को ही दृष्टि में रखा था, इसलिए

---

1. गाँधी, हरिजन, 25.8.40
2. कि0 घ0 मशरूवाला, गाँधी और साम्यवाद, पृ0 69।

पूंजीवादी और श्रमिक वर्ग के अतिरिक्त अन्य आधारों पर बने वर्गों पर समुचित विचार नहीं कर सका था। गाँधी जी ने व्यावसायिक वर्गों के अतिरिक्त अन्य प्रकार के सामाजिक वर्गों ओर उपवर्गों को भी दृष्टि में रखा। उदाहरण के लिए छात्र और शिक्षक वर्ग, स्त्री और पुरुष वर्ग, धार्मिक वर्ग, शासक और शासित वर्ग, नेता वर्ग और प्रशासक वर्ग आदि अनेक सामाजिक समूह हैं, जिनकी कार्य–प्रणाली और समस्याओं पर उन्होंने सूक्ष्म रूप से विचार किया और इन वर्गों के पारस्परिक संघर्ष के समुचित समाधान प्रस्तुत किए।

भारतवर्ष में हरिजन और सवर्ण, हिन्दू और मुस्लिम, स्त्री और पुरुष, शासक और शासित वर्गों का संघर्ष विशेष रूप से वैचारिक आधार पर था। यहाँ की रूढ़िवादी, अन्धविश्वासी, विकृत और भ्रमित विचारधाराओं ने सामाजिक जीवन में अनेक समस्याएं उत्पन्न कर रखी थीं, जिनसे सम्पूर्ण समाज की प्रगति अवरुद्ध हो रही थी। गाँधी जी ने वैचारिक गत्यावरोध को भंग करके विभिन्न वर्गों में चेतना उत्पन्न की और विभिन्न वर्गों को उचित परिप्रेक्ष्य देने का क्रान्तिकारी प्रयत्न किया। फलतः हरिजनों की स्थिति में असाधारण सुधार हुआ, साम्प्रदायिक संघर्ष कम हुए, स्त्रियों को स्वतन्त्रता मिली तथा उनका कार्य–क्षेत्र अधिक व्यापक हुआ और अंग्रेजों ने बिना सशस्त्र क्रांति के ही भारत छोड़ा। यद्यपि यह ठीक है कि अभी समाज के विभिन्न वर्गों में वांछनीय और उचित सामंजस्य नहीं हुआ है लेकिन गाँधी जी के सामाजिक चिन्तन का सबसे महत्त्वपूर्ण परिणाम यह निकला है कि भारत की जनता में वर्गीय सम्बन्धों में परिवर्तन करने के लिए जागृति उत्पन्न हो गई है।[1] इतना ही नहीं, सविनय अवज्ञा, सत्याग्रह आदि गाँधी जी के शान्तिपूर्ण उपायों को विभिन्न वर्ग ने बहुत अधिक सीमा तक स्वीकार भी कर लिया। भारतीय सामाजिक जीवन की परिधि से बाहर, अन्तरराष्ट्रीय क्षेत्र के राष्ट्र–वर्ग अपने संघर्षों के निराकरण के लिए शान्तिपूर्ण उपायों का अनुसरण करने लगे हैं। घोर मार्क्सवादी विचारों के प्रतिनिधि कम्यूनिस्ट देश भी हिंसा से भयभीत दृष्टिगोचर हो रहे हैं और शान्तिपूर्ण साधनों की ओर मुड़ रहे हैं। यही तथ्य गाँधी जी की वर्ग सम्बन्धी वैचारिक विभूति की व्यावहारिकता के कुछ प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

1. डा0 टी.के.एन. उन्नीथान, गाँधी एण्ड फ्री इण्डिया, पृ. 223

4

गाँधी : सामाजिक स्तरण का सिद्धांत

1. प्रारम्भिक

संसार के समस्त समाजों में स्तरण व्यवस्था वर्तमान है।[1] यह स्तरण कई रूपों में मिलता है। यह कहीं प्रजातीय रंग–भेद के आधार पर है, कहीं आर्थिक स्थिति के अनुसार है, और कहीं जन्म पर आश्रित है। अमेरिका में गोरे–काले रंग के आधार पर समाज का स्पष्ट विभाजन देखने को मिलता है; योरोप में मुख्य रूप से आर्थिक स्थिति की दृष्टि से समाज वर्गीकृत है, और भारत में वंशानुगत जातीय विभेद की प्रणाली प्रचलित है।

पिछले तीनों अध्यायों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि गाँधी जी को स्तरण के उक्त तीनों रूपों में हिंसा, शोषण और अमानवीय मूल्यों का आधिक्य अनुभव होता है। वह इन प्रणालियों को व्यक्तित्व के समुचित विकास और समाज की वास्तविक प्रगति का बाधक मानते हैं।

इस सम्बन्ध में, गाँधी जी के समान ही विश्व के अन्य अधिकांश समाजशास्त्री और विचारक भी अनुभव करते हैं और इस समस्या के समाधान के लिए अपने–अपने मत प्रस्तावित करते हैं। इनमें मार्क्स और उसके अनुयायी वर्ग–विहीन समाज की कल्पना करते हैं तथा भारत के अनेक सामाजिक सुधारक जाति–विहीन सामाजिक संरचना की योजना प्रस्तुत करते हैं। लेकिन गाँधी जी के लिए ये दोनों प्रकार के विचार आत्यन्तिक, अव्यावहारिक, कल्पनात्मक और अस्वाभाविक हैं।[2] अतः उन्होंने शान्तिपूर्ण और प्रजातन्त्रात्मक सामाजिक संरचना को दृष्टि में रखते हुए सामाजिक संगठन या सामाजिक स्तरण के सम्बन्ध में अपना सिद्धान्त प्रस्तुत किया, जिसे उन्होंने 'वर्ण–व्यवस्था का सिद्धान्त' नाम दिया, जिसके सम्बन्ध में हम पिछले पृष्ठों में संकेत कर चुके हैं। अब यहाँ पर हम उस सिद्धान्त पर कुछ अधिक विस्तार से विचार करेंगे।

---

1. इस सम्बन्ध में, मेक्सवेबर, पिटरिम सोरोकिन, टलकट पारसन्स, आर. एम. मेकाइवर, किंग्सले डेविस, राधाकमल मुखर्जी आदि समाजशास्त्रियों का भी यही मत है।
2. वर्ग–विहीन या वर्ण–विहीन समाज की कल्पना का खण्डन विश्व के अधिकांश प्रख्यात समाजशास्त्रियों ने किया है। जिन देशों में वर्ग–विहीन सामाजिक व्यवस्था के निर्माण का प्रयास हुआ है, वहाँ एक प्रकार के वर्गों का किसी सीमा तक उन्मूलन हुआ है, लेकिन वहाँ नए प्रकार के वर्गों और संघर्ष ने जन्म ले लिया है।

2. वर्ण–व्यवस्था क्या नहीं है ?

वर्ण–सिद्धान्त हिन्दुओं का अति प्राचीन विचार है। इसके सम्बन्ध में बहुत भ्रामक धारणाएं फैली हुई थीं। दीर्घकाल से जाति–पांति के रूप में प्रचलित व्यवस्था को ही लोग वर्ण–व्यवस्था मानते थे। गाँधी जी ने स्वाध्याय और चिन्तन से इस भ्रम का निवारण किया। उन्होंने यह घोषित किया कि वर्ण–सिद्धान्त में ऊँच–नीच का भेद–भाव नहीं है, छुआ–छूत का विचार इसमें सन्निहित नहीं है तथा विभिन्न वर्णों में परस्पर विवाह करना भी निषिद्ध नहीं है। चूंकि आज हिन्दू समाज में वर्ण–व्यवस्था के नाम पर इन्हीं बातों पर विशेष बल दिया जाता है, इसलिए गाँधी जी के अनुसार हिन्दू समाज में सच्ची वर्ण–व्यवस्था का अस्तित्व नहीं रह गया है।

3. वर्ण–सिद्धान्त क्या है ?

गाँधी जी के मतानुसार वर्ण–सिद्धान्त विशुद्ध रूप से व्यावसायिक आधार पर समाज का विभाजन है। इस सिद्धांत के अनुसार प्रत्येक समाज में जन्म के आधार पर ही प्रत्येक व्यक्ति को अपनी जीविका उपार्जित करने का व्यवसाय प्राप्त होना चाहिए। किसी व्यक्ति को अपना पैतृक व्यवसाय त्याग कर किसी दूसरे वर्ण का व्यवसाय नहीं ग्रहण करना चाहिए।

यदि किसी व्यक्ति में अपने वर्ण के अतिरिक्त किसी दूसरे वर्ण के कार्य करने की असाधारण क्षमता है, तो वह व्यक्ति अन्य वर्ण का कार्य करे, लेकिन अर्थोपार्जन की दृष्टि से नहीं, अपितु सेवाभाव से। उदाहरण के लिए यदि किसी शूद्र में वेदों के अध्ययन–अध्यापन की असाधारण इच्छा है तो वह यह कार्य समाज के हित में सेवा–भाव से कर सकता है, लेकिन प्रत्येक दशा में उसे अपनी जीविका पैतृक व्यवसाय से ही अर्जित करनी चाहिए।

इस प्रकार गाँधी जी का मूलभाव यह है कि प्रत्येक वर्ण के व्यक्तियों को अपने–अपने वर्ण के निर्धारित कार्यों को प्रसन्नतापूर्वक कर्त्तव्य या धर्म के रूप में स्वीकार करना चाहिए तथा पूर्ण निष्ठा के साथ उनका पालन करना चाहिए।

वर्ण–व्यवस्था के अन्तर्गत विभिन्न वर्गों के लोगों में परस्पर समानता के भाव का बोध होना अनिवार्य है। चूँकि प्रत्येक वर्ण का कार्य समाज के अस्तित्व के लिए अपरिहार्य है, इसलिए सभी वर्णों के कर्म समान रूप से महत्त्वपूर्ण हैं और सब वर्णों के लोगों का समान स्तर है और सब वर्णों के लोगों की प्रतिष्ठा समान है और सब वर्णों का लक्ष्य समाज की अधिकतम सेवा करना है। गाँधी जी का कथन है, ''सृष्टि के प्राणिमात्र की तात्त्विक एकता और अभेद को जो जानता है, उसके लिए ऊँच–नीच के भाव की गुंजाइश ही नहीं। जीवन एक कर्म–क्षेत्र है, वह अधिकार और सत्ता का संचय नहीं।''[1]

गाँधी जी की मान्यता के अनुसार वर्ण–व्यवस्था का प्रत्यक्ष रूप से खान–पान और विवाह आदि से कोई सम्बन्ध नहीं है, फिर भी यदि इस प्रश्न पर विचार ही किया जाए तो यह कहा जा सकता है कि सब वर्ण समान हैं, इसलिए रोटी–बेटी के सम्बन्ध में कोई भेदभाव नहीं करना चाहिए, ऊँच–नीच की भावना को दृष्टि में नहीं रखना चाहिए। लेकिन प्रायः इस प्रकार की स्वतन्त्रता सामान्य लोगों में उच्छृंखलता को प्रोत्साहन देती है और सामाजिक अव्यवस्था को जन्म देती है, इसलिए इस सम्बन्ध में संयम और विवेक की आवश्यकता है। इस सम्बन्ध में वह यह नियम निर्धारित करते हैं, ''कुदरती तौर पर सब अपने जैसे रीति–रिवाज और आदत वालों के साथ रोटी–बेटी का व्यवहार रखेंगे।......... अपनी सहूलियत के हिसाब से सब अपने रिश्ते ढूँढ़ लेंगे और जहाँ उनकी आत्मा संतुष्ट होगी वहीं खायेंगे और बैठेंगे।''[2] यदि कोई व्यक्ति शुद्ध भाव से किसी दूसरे वर्ण के व्यक्ति के साथ बैठकर भोजन करता है या दूसरे वर्ण की लड़की से विवाह करता है, तो उसका वर्ण नष्ट नहीं होता है। लेकिन यदि कोई व्यक्ति लालच या वासना से विवश होकर उक्त कार्य करता है, तो निश्चित ही वह अपने वर्ण–धर्म में भ्रष्ट हो जाता है।

गाँधी जी के मतानुसार वर्ण–व्यवस्था में समाज में प्रचलित समस्त व्यवसाय प्रतिष्ठा और आय की दृष्टि से समान स्तर के होने चाहिए। ''मंत्री, वकील, डाक्टर, व्यापारी, चमार, बढ़ई, भंगी और ब्राह्मण बराबर–बराबर कमाएँ।'' यदि किसी वर्ण के व्यवसाय में किसी कारण से अधिक आय हो तो उस वर्ण के व्यक्तियों का कर्त्तव्य और धर्म है कि वे अतिरिक्त आय समाज–सेवा के लिए अर्पित कर दें, केवल सामान्य और सरल जीवन

---

1. गाँधी, वर्ण–व्यवस्था, पृ. 15।
2. गाँधी, वर्ण–व्यवस्था, पृ0 55।

व्यतीत करने के लिए ही अपने पास धन रखें। परम्परा से वर्णों के व्यवसाय के साथ विभिन्न स्तरों की प्रतिष्ठा संलग्न चली आ रही है। जिस वर्ण व्यवसाय में शारीरिक श्रम अधिक होता है, उसे निम्न स्तर का समझा जाता रहा है। इसी कारण शूद्र सामाजिक स्तरण की निम्नतम श्रेणी में रखे गए हैं। गाँधी जी ने इस भावना के उन्मूलन के लिए अपने वर्ण–सिद्धान्त में यह व्यवस्था की है कि समाज का प्रत्येक सदस्य शरीर–श्रम अवश्य करे। प्रत्येक व्यक्ति को अपने नित्य–प्रति के कार्य स्वयं करने चाहिए। विशेष रूप से उन कामों को अवश्य करना चाहिए, जिन्हें समाज में आज तक नीचा समझा जाता है। उदाहरण के लिए पाखाने की सफाई, कताई, बुनाई, सुतारी, लोहारी आदि। गाँधी जी का मत है, ''शरीर–श्रम के इस निरपवाद कानून को सब मानें, तो ऊँच–नीच का भेद मिट जाए।''

गाँधी जी समाज को चार वर्णों – ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र – में विभक्त करने के पक्ष में हैं। वह हिन्दुओं के इस प्राचीन विभाजन को अधिक स्वाभाविक और सुविधाजनक मानते हैं। इस सम्बन्ध में उनका दृढ़ मत है, ''वर्ण हिन्दुओं पर लादी हुई चीज नहीं, बल्कि जिन बुजुर्गों के सिर पर हिन्दू जाति का भला करने की जिम्मेदारी थी, उन्होंने हिन्दुओं के लिए यह कायदा खोज निकाला था। नियम मनुष्य की कृति नहीं–कुदरत का अटल कानून है। न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण की तरह जो शक्ति सदा रहती है और सृष्टि में ंचलती है, उसी को इन्सान की भाषा में वर्ण कह दिया है।''[1] लेकिन वह हिन्दुओं की चार वर्णों की संख्या के प्रति दुराग्रह नहीं व्यक्त करते हैं। उनके मत से यह संख्या अधिक उपयुक्त और वैज्ञानिक है; लेकिन देश–काल की परिस्थितियों के अनुसार इस संख्या में सामान्य परिवर्तन किया जा सकता है। गाँधी जी चारों वर्णों के कर्त्तव्यों के सम्बन्ध में कहते हैं कि वर्ण–व्यवस्था नीति–धर्म के सम्यक् पालन की योजना है। इसमें वैयक्तिक स्वार्थों की पूर्ति के लिए स्थान नहीं है। यह तो विशुद्ध रूप से समाज–सेवा, मानव–सेवा की प्रणाली है। इसमें 'ब्राह्मण ब्रह्म के जानने और बताने में समय लगाए और यह माने कि उसका गुजर भगवान चलाता है। क्षत्रिय प्रजा के पालन का फर्ज अदा करें और उसके बदले गुजारे के लिए हद के भीतर खर्च ले। वैश्य जनता की भलाई के लिए खेती, गाय की परवरिश और व्यापार करे; जो रुपया मिले उसमें सच्चा वैश्य अपने गुजर

1. गाँधी, वर्ण–व्यवस्था, पृ0 22।

के लायक रखकर बाकी को लोगों की भलाई में लगा दे। इसी तरह शूद्र सेवा करे तो धर्म समझ कर।''[1] इस प्रकार गाँधी जी अपने वर्ण–सिद्धान्त में कर्त्तव्य–पालन पर अधिकतम बल देते हैं और अधिकारों को न्यूनतम स्थान देते हैं। उनका विश्वास है कि यदि सामाजिक संरचना में अधिकार के भाव का लोप हो जाए और परार्थ तथा सेवा की भावना का विकास हो जाए, तो समाज की सम्पूर्ण अशान्ति और अव्यवस्था सरलता से समाप्त हो जाए।

हम ऊपर कह चुके हैं कि गाँधी जी वर्ण का निर्धारण जन्म से करते अवश्य हैं और इसे स्थायी समाज–व्यवस्था के लिए अनिवार्य मानते हैं लेकिन इसका यह आशय नहीं है कि वह गुण और कर्म को कम महत्त्व देते हैं। वास्तव में, वह गुण और कर्म को भी समान स्थान देते हैं। उनका स्पष्ट मत है कि वर्ण–व्यवस्था के अन्तर्गत जो व्यक्ति अपने वर्ण के निर्धारित कर्त्तव्यों का पालन नहीं करता है, वह वर्ण–पद से च्युत हो जाता है। 'ब्राह्मण' का लड़का ब्राह्मण के घर पैदा होकर ब्राह्मण तो कहलाएगा, मगर बड़ा होने पर उसमें ब्राह्मण के लक्षण या गुण न दिखे तो वह ब्राह्मण नहीं माना जाएगा। वह तो पतित हुआ। इससे उलटा, जो दूसरे वर्ण में पैदा होकर ब्राह्मण के लक्षण साफ–साफ और रोज बताया करेगा, वह भले ही खुद को ब्राह्मण न कहे, तो भी ब्राह्मण मानने लायक होगा। दुनिया उसे ब्राह्मण ही मानेगी। इसका तात्पर्य यह हुआ कि वर्ण–व्यवस्था में सामाजिक प्रतिष्ठा का आधार कर्म है, जन्म नहीं। लेकिन कर्म के आधार पर किसी को अपने वर्ण–परिवर्तन की छूट नहीं।

गाँधी जी के वर्ण–सिद्धान्त की अन्तिम किन्तु महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि वह इस सिद्धान्त या नियम को केवल हिन्दू समाज के लिए ही उपयुक्त नहीं मानते हैं, अपितु वह इसे शाश्वत और सार्वभौम सामाजिक तथ्य के रूप में स्वीकार करते हैं। उनका विचार है कि संसार के प्रत्येक समाज में व्यवसायों के आधार पर विभाजन मिलता है; लेकिन यह विभाजन दोषपूर्ण, अपूर्ण होने से समाज को शक्ति और शान्ति देने में अधिक सहायक नहीं हो पाया। हिन्दुओं ने वर्ण–सिद्धान्त के द्वारा आदर्श प्राकृतिक और स्थायी नियम की खोज कर ली थी, जिसे किसी भी देश और जाति में व्यवहार करने से सामाजिक कल्याण का मार्ग प्रशस्त हो सकता है। गाँधी जी कहते हैं, ''यह सही है कि वर्ण–धर्म की खोज हिन्दू

---

1. गाँधी, वर्ण–व्यवस्था, पृ0 14।

धर्म में हुई है, मगर इससे कोई यह न माने कि ये नियम हिन्दुओं को ही लागू होते हैं और दूसरों को नहीं होते।''

4. वर्ण–सिद्धान्त तथा अन्य विचारक

गाँधी जी के वर्ण सिद्धान्त को समझकर पाठक के मन में यह शंका उठ सकती है कि वह आधुनिक युग में पुराने सिद्धान्त को लागू करना चाहते हैं, जो सम्भवतः आज की परिवर्तित परिस्थितियों और जीवन मूल्यों के लिए उपयुक्त न हो। इस शंका के समाधान के लिए मैं यह कहना चाहूंगा कि प्राचीन तथा आज के अनेक पाश्चात्य प्रबुद्ध समाजशास्त्री स्थायी और शान्तिपूर्ण सामाजिक व्यवस्था तथा संरचना के लिए किसी–न–किसी रूप में वर्ण सिद्धान्त के आस–पास ही चक्कर काट रहे हैं। कुछ लोग वर्ण–व्यवस्था की मुक्त कंठ से प्रशंसा करते हैं और कुछ लोग घुमा–फिरा कर वर्ण व्यवस्था के समान ही व्यवस्था लाने के लिए योजना प्रस्तुत करते हैं।

यूनान के महान विचारक प्लेटो ने सामाजिक संघटन के पक्ष पर विचार करते हुए आदर्श समाज की कल्पना की है, जिसमें वह समाज में केवल तीन वर्गों को चाहता है – (1) रक्षक, (2) योद्धा तथा (3) कलाविद। प्रो0 उरविक का मत है कि प्लेटो का यह त्रैवर्गिक समाज का विचार भारतीय वर्ण–व्यवस्था से प्रभावित है। प्लेटो और गाँधी जी दोनों इस बात से सहमत है कि समाज में अपरिग्रह की नीति का पूर्ण पालन होना चाहिए। प्लेटो का मत है कि अत्यधिक निर्धनता मनुष्य को नीच बनाती है और अत्यधिक धन से भी व्यक्ति विलासी और अउद्यमी बनता है। दोनों से असन्तोष की सृष्टि होती है, तथा दोनों से काम का ह्रास होता है। वह कहता है कि जहाँ लोग सम्पत्ति संग्रह करने लगते हैं, वहाँ अनुकरण का नियम काम करने लगता है अर्थात, एक–दूसरे को देखकर लोग धन–संग्रह करने की प्रतिस्पर्धा में लग जाते हैं। वह निर्धनता ओर अमीरी के अतिवादी स्वरूपों को रोकने के पक्ष में है।[1]

समाजमनौवैज्ञानिक डा0 विलियम मैक्डूगल ने विश्व की सामाजिक समस्याओं पर विचार करते हुए सामाजिक संरचना पर भी अपना मत व्यक्त किया है। उसने भी त्रिवर्गीय प्रणाली (Three Class System) की विस्तृत रूपरेखा प्रस्तुत की है। उसकी यह योजना

1. शम्भूरत्न त्रिपाठी, सामाजिक विचारों का इतिहास, पृ0 33–34।

भी वर्ण–व्यवस्था के निकट है। वह अपनी योजना के निष्कर्ष में स्पष्ट कहता है, ''इस प्रकार राष्ट्र सरल जातीय संघटन के लाभों को प्राप्त कर लेगा।''[1] यद्यपि मैक्डूगल और गाँधी जी की व्यवस्था में बहुत अन्तर है; लेकिन दोनों के मूल उद्देश्य में विशेष अन्तर नहीं है।

प्रख्यात समाजशास्त्री डा0 जे0एल0 गिलिन ने पाश्चात्य समाज की सामाजिक स्तरण की प्रणाली में उत्पन्न अनेक समस्याओं का सूक्ष्म अध्ययन किया। वह इन समस्याओं के समाधान के लिए एकमात्र उपाय यह बताता है कि समाज के विभिन्न वर्गों के पारस्परिक सम्बन्धों का संघटन पारस्परिक संतोष के आधार पर होना चाहिए। इस सम्बन्ध में वह यह भी कहता है कि भारत की वर्ण–व्यवस्था, पाश्चात्य सम्पर्क के पूर्व, इसी आधार पर थी। ''सामाजिक जीवन स्थायी आधार पर था; विभिन्न वर्णों के पारस्परिक सम्बन्ध भली प्रकार समझे हुए थे; लोग इन सम्बन्धों के लिए अभ्यस्त थे; विभिन्न पक्षों में बहुत कम ईर्ष्या–द्वेष था। लोगों ने व्यवस्था के अनुकूल अपने को ढाल लिया था।''[2] गिलिन भी आधुनिक युग की समस्याओं के समाधान के लिए भारतीय वर्ण–व्यवस्था की ओर ही आशाभरी दृष्टि से देखता है। पाश्चात्य सामाजिक समस्याओं के विशेषज्ञ ए0 आर0 लिण्डस्मिथ तथा ए0 एल0 स्ट्रास ने लिखा है कि अमेरिका की मुक्त वर्ग व्यवस्था (Open Class System) व्यक्तियों की महत्त्वाकांक्षाओं को प्रोत्साहन देती है, लेकिन जिन लोगों की इच्छाओं और आकांक्षाओं की पूर्ति नहीं हो पाती है, उनमें असंतोष और भग्नाशा की भावना अत्यन्त प्रबल रूप में उत्पन्न होती है, जो सामाजिक शान्ति और व्यवस्था के लिए बहुत हानिप्रद है। उनका मत है कि अमुक्त वर्ग–प्रणाली (अर्थात् वर्ण–व्यवस्था) में सदस्यों की महत्त्वाकांक्षाएं सीमित हो जाती हैं, जिससे भग्नाशा और निराशा नहीं उत्पन्न हो पाती है।[3] ये दोनों विद्वान गाँधी जी की भांति वर्ण–व्यवस्था की कोई योजना तो नहीं प्रस्तुत करते हैं, लेकिन अमुक्त वर्ग–व्यवस्था की बात कह कर अप्रत्यक्ष रूप से गाँधी जी की विचारधारा के निकट तो हैं ही।

समाजशास्त्र के जन्मदाता आगस्ट काम्ट तथा प्रख्यात समाजशास्त्री इमाइल डुरखीम ने सामाजिक संघटन के प्रश्न पर विचार किया है। दोनों विद्वानों का दृढ़ विश्वास है कि

---

1. डा0 मैक्डूगल, इथिक्स एण्ड मार्डन वर्ल्ड प्राब्लम्स, पृ0 205।
2. डा0 के0एल0 गिलिन, सोसल पैथोलाजी, पृ0 418।
3. जान एरिक नार्ड्सकाग (सं0) अनालाइजिंग सोसल प्राब्लम्स, पृ0 42।

श्रम–विभाजन अत्यन्त आवश्यक है तथा यह विभाजन नैतिकता पर आधारित होना चाहिए। काम्ट चाहता है कि समाज की संरचना सामाजिक नैतिकता से अनुप्राणित होनी चाहिए। वह व्यवस्था किसी भी समाजवादी व्यवस्था से अधिक प्रभावपूर्ण होगी, जो किसी राजनीतिक या आर्थिक आधार की अपेक्षा नैतिक आधार पर आश्रित होगी। उसका विचार है कि यदि एक बार आध्यात्मिक शक्ति के निर्देशन में नैतिक शिक्षा की स्थापना हो जाती है, तो पूँजीवादी वर्ग और निर्धन वर्ग के संघर्ष का कोई भय नहीं रहेगा।[1] डुरखीम का मत है कि अहंवादी और सुखवादी व्यक्तिवाद से सामाजिक एकता कभी उपलब्ध नहीं होती है। शान्तिपूर्ण और उपयोगी संविदात्मक (Contractual) सामाजिक सम्बन्ध केवल ऐसी कानूनी और नैतिक व्यवस्था में सम्भव हो सकते हैं, जो संविदा के उचित और न्यायपूर्ण रूपों को सुरक्षित करती है, इन संविदाओं से उत्पन्न होने वाले कर्त्तव्यों की निश्चित व्यवस्था करती है, और उनको कार्यान्वित करती है।

इस प्रकार काम्ट और दुरखीम दोनों श्रम–विभाजन में नैतिकता और कर्त्तव्य पर सर्वाधिक बल देते हैं। गाँधी जी का वर्ण–सिद्धान्त उनकी अस्पष्ट अवधारणा को स्पष्ट, व्यावहारिक और संतुलित रूप में प्रस्तुत करता है।

पाश्चात्य विचारक पी0डी0 आउसपेन्स्की का विचार है कि वर्ण–विभाजन आदर्श सामाजिक संघटन का प्रतिनिधित्व करता है। निस्सन्देह यही स्वाभाविक विभाजन है। मानव–समाजों का समुचित विकास इस सिद्धान्त को स्वीकार करने तथा इसके अनुसार चलने में ही सम्भव है। वर्ण–सिद्धान्त में मनुष्य को सही मार्ग दिखाया गया है।[2]

इन विद्वानों के अतिरिक्त नीत्से, सिडनी लो, अबेडुबाय, मेरिडिथ, पिटरिम सोरोकिन आदि ने भी वर्ण–व्यवस्था को आधुनिक युग के लिए उपयुक्त माना है।

भारतीय सामाजिक चिन्तकों में डा0 भगवानदास, राधाकृष्णन डा0 राधाकमल मुकर्जी वर्ण–सिद्धान्त द्वारा ही आधुनिक युग की सामाजिक समस्याओं का समाधान स्वीकार करते हैं। डा0 मुकर्जी का कहना है, ''वर्ण तो स्वस्थ सामाजिक व्यवस्था का वह नियम है, जो

1. लुसियन लेबी ब्रुहल, दि फिलास्फी आफ आगस्ट काम्टे, पृ0 304।
2. पी0डी0 आउस्पेंस्की, ए न्यू माडल आफ दि यूनीवर्स, पृ0 508।

ज्ञानी और श्रमिक को उच्चतम स्तर तक उठा देता है और धन, स्वामित्व एवं व्यवसाय को भेद–भाव का आधार नहीं बनने देता है।[1]

इन समस्त सामाजिक विचारकों और समाज–वैज्ञानिकों के मतों से यह स्पष्ट होता है कि गाँधी जी वर्ण–सिद्धान्त के द्वारा आज के समाज को आदिमयुगीन समाज में परिवर्तित नहीं करना चाहते हैं, अपितु वह सामाजिक संघटन के सार्वदेशिक और सार्वकालिक वैज्ञानिक सिद्धान्त के शुद्ध व्यवहार के लिए लोगों को सचेत कर रहे हैं। यह भी स्पष्ट होता है कि गाँधी जी की सामाजिक स्तरण सम्बन्धी विचारणा वैज्ञानिकों की चिन्तना से पीछे नहीं है, अव्याहारिक नहीं है।

---

1. डा0 राधाकमल मुकर्जी, भारतीय समाज–विन्यास पृ0 16।